

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182975

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/K16K

Accession No. H2731

Author

माता सुमित्रादे

Title

शान्ति

This book should be returned on or before the date last marked below



कान्त-साहित्य-सदन

मङ्गलूरिधा. मिर्जापूर

कुंकुम

स्व० कुरावाहा कान्त

प्रकाशक
विशोक कृष्णदास
क्रान्त साहित्य खदन
महुवरिया, मिर्जापुर

●
नवीन संस्करण
तीन रुपया

मुद्रक
चिनगारी प्रेस, वाराणसी ।

‘तुरन’ को

मदमत्त मेघों ने स्वच्छाकाश पर अपना नृत्य आरम्भ कर दिया । वायु वृक्षों के कोमल पत्तियों का आलिङ्गन करता हुआ विचरण करने लगा । मयूर हर्षोत्फुल्ल हो चीत्कार कर उठे । मनोरम बनस्थली के विहंग, वृक्षों की शाखाओं पर बैठकर कलरव करने में निमग्न हो गये । भुवनभास्कर के प्रज्ज्वलित मुखमंडल को उमड़ती हुई सघन घनराशि ने आच्छादित कर लिया ।

युवराज ने एक क्षण के लिए अपना अश्व ठमका कर सामने के बन्य-प्रदेश पर दृष्टि डाली—कितना सघन, कितना वृक्षलतादिपूर्ण एवं कितना मनोहारी था भूखंड का वह विभाग ! जहाँ पक्षियों का गुञ्जरित कलरव, प्रकृति नटी का अद्भुत सृजन एवं नेत्ररंजक हरियाली का मुग्धकारी नृत्य हृदय प्रदेश में एक अनिवर्चनीय आनन्द की सृष्टि कर रहा था । संसार की कोलाहलमयी सीमा से दूर अवस्थित था बनस्थली का वह अपूर्व प्रदेश । युवराज, अपने नेत्रों पर हथेली की आड़ देकर, सामने की ओर देखने लगे, परन्तु मन्थरगति से हिलती हुई वृक्षों की टहनियों के अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर न हुआ ।

“जम्बुक कहाँ रह गया ?”—युवराज ने, मानों बनस्थली में आच्छादित उस घोर नीरवता से प्रश्न किया और फिर तुरन्त ही अश्व से नीचे उतर पड़े । अश्व की लम्बी बागडोर एक वृक्ष की शाखा से बाँधकर वे एक स्वच्छ स्फटिक-शिला पर आ बैठे । आज ऊषा के आगमन के साथ ही साथ युवराज ने उस बनस्थली में पदार्पण किया था—आखेट के हेतु । उनके साथ कितने ही पायक थे, परन्तु इस समय सब न जाने किधर भटक गये थे और युवराज वाराह की खोज

में भयानक जंगल के उस भाग में आ पहुँचे थे। युवराज के सुगठित शरीर पर वे बहुमूल्य वस्त्र एक विचित्रता के लिए देदीप्यमान हो रहे थे। उनकी सुन्दर मुखाकृति पर भिनती हुई यौवन-रेखायें अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही थीं—कंधे पर लगा हुआ कार्मुक, तूषार में आच्छादित कितने ही तीर एवं पार्श्व में लटकता हुआ तीक्ष्ण कृपाण—सब उनके अतुल्य शक्ति के साक्षी थे।

सृष्टि के आदि काल में, जिस समय संसार इतना सम्य नहीं था, इतनी विशाल अट्टालिकायें, इतने वैभवशाली राज प्रासाद एवं इतना उन्नत कला-कौशल नहीं था; जनता में शान्ति की रक्षा के लिये इतने नियम, इतने झूठे कानून नहीं बने थे; लोग अपने झगड़ों का निवारण तलवार की चमक से किया करते थे—उस समय समस्त जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) पर एक जाति शासन करती थी—द्रविड़। द्रविड़राज युगपाणि की राजधानी थी पुष्पपुर एवं युवराज नारिकेल थे युगपाणि के एकमात्र सन्तान।

“जम्बुक !... जम्बुक !...” युवराज की तीव्र पुकार निर्जन वन्य-प्रदेश में गुञ्जायमान हो उठी।

“जम्बुक !... जम्बुक !...” दूर क्षितिज से टकराकर युवराज की ध्वनि वापस लौट आई, मानों उनका परिहास करता हुआ चारों दिशाओं में प्रकृति का भयानक अट्टहास गूँज उठा हो।

उसी समय पास की सघन वृक्षावलि से सूखे पत्तों के चरमराने की ध्वनि सुनाई पड़ी। युवराज चौंककर उठ खड़े हुए। देखा, भयानक खोंगोवावा एक वाराह खड़ा था, अपने प्रज्वलित नेत्रों द्वारा युवराज को घूरता हुआ। युवराज के नयन प्रकाशमान हो उठे। उनके विशाल बाहु उल्लासित हो उठे। उन्होंने कार्मुक पर तीर चढ़ाया। वाराह के मुख से क्रोधपूर्ण घुरघुराहट की ध्वनि निकल पड़ी। वह प्रबल वेग से दूट पड़ा युवराज के ऊपर। युवराज सम्हल गये थे। जरा सा पीछे हटकर बाईं ओर खड़े हो गये—दूसरे ही क्षण तीव्रगति से उन्हें ग्रसन

करने के लिए आते हुए उस विकराल वाराह के तीक्ष्ण दांत दाहिनी ओर के वृक्ष में पूरे धँस गये। उसका वार खाली गया और इससे वह भयानक जन् और भी क्रोधित हो उठा। उसके मुख से दिशाओं को प्रताड़ित करती हुई भयानक घुरघुराहट निकली।

युवराज ने कार्मुक कान तक खींची। दूसरे ही क्षण तीर सराता हुआ जाकर उस क्रुद्ध वाराह के पंजर में घुस गया। दारुण चीत्कार के साथ वह भूमि पर लेट गया और छुटपटाने लगा। युवराज धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़े। उनका अनुमान था कि वह मृतप्राय वाराह इस समय पूर्णतया अशक्त है और उन्हें किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। इसीलिए वे उस वाराह के समीप तक चले गये—परन्तु ज्यों ही वे उसके सन्नकट पहुँचे, वह वाराह विचित्र गति से उठ खड़ा हुआ और सामने के घने जंगल की ओर भाग चला।

अपने शिकार को भागा जाता हुआ देखकर युवराज लपक कर अपने अश्व पर आरुढ़ हो गये। उनका संत पाकर वह द्रुतगामी अश्व परिलक्षित दिशा की ओर भाग चला, अविराम गति से। कितने ही नदनारे, झाड़ भँखाड़, पार किये जा चुके; परन्तु न तो वह वाराह ही रुका और न तो युवराज ने उसका पीछा ही छोड़ा। दोनों में से किसी की भी गति में बाधा न पहुँची। युवराज का अश्व इतना अभ्यस्त था कि ऊबड़-खाबड़ भूमि पर भी तीव्र गति से अग्रसर हो रहा था।

पीछा करने की धुन में युवराज ने इस बात पर ध्यान न दिया कि उनके मार्ग में ही एक वृक्ष की शाखा बहुत नीचे तक लटकती हुई है। दूसरे ही क्षण एक कर्ण चीत्कार के साथ युवराज अश्व पर से नीचे आ रहे। वृक्ष की शाखा उनके मस्तक से इतन प्रबल वेग से टकराई कि रक्त की धारा प्रवाहित हो चली। स्वामिभक्त अश्व दो चार पग आगे बढ़कर खड़ा हो गया। युवराज कुछ क्षणों तक चेतानाहीन रहे।

परन्तु चैतन्यता आते ही वे पुनः अश्व पर जा चढ़े। मस्तक के

घाव का उन्हें कुछ ध्यान ही न रहा—ध्यान रहा तो केवल उस वाराह का, जो इस समय उनकी दुर्दशा का कारण हुआ था। वाराह अधिक दूर नहीं गया था, कि युवराज ने पुनः अपने कार्मुक पर तीर चढ़ाया। सराता हुआ वह तीर जाकर वाराह की ग्रीवा में घुस गया। ठीक उसी समय पास की सघन वृद्धावलि के पीछे से एक साँगी प्रबल वेग से आकर उस वाराह के पंजर में लगा। इन दोनों प्रबल आघातों को सहन न कर सकने के कारण वह दुर्दान्त वाराह भूमि पर लुढ़क कर अपने जीवन की अन्तिम श्वास लेने लगा।

युवराज को आश्चर्य हुआ, महान् आश्चर्य—यह देखकर कि उनके शिकार पर इसप्रकार अन्यायपूर्ण आक्रमण करने वाला यह दूसरा कौन आ पहुँचा। युवराज अपने अश्व पर से नीचे उतरे। उसी समय उस सघन वृद्धावलि से निकल कर एक बीस वर्षीय युवक उनके सन्मुख आ खड़ा हुआ। युवराज ने ध्यान पूर्वक उस युवक पर दृष्टि डाली। देखा—उसके मुख पर प्रतिभा प्रस्फुटित हो रही थी, शरीर नग्न था, केवल कटि-प्रदेश पर एक साधारण सा वस्त्र था, पार्श्व में कृपाण लटक रहा था एवं हाथ में थी एक साँगी। वेष-भूषा से वह किरात पुत्र-सा लग रहा था।

“कौन हो तुम ?”—युवराज ने पूछा उस वीर युवक से।

“मैं किरातकुमार पर्णिक हूँ”—युवक ने किञ्चित् हास्य के साथ प्रत्युत्तर दिया।

“किरात कुमार पर्णिक ?”—युवराज ने स्थिर वाणी से दुहराया। उनका हृदय तीव्र वेग से क्रोधित हो उठा था, यह सोचकर कि उस धृष्ट युवक ने उनके शिकार पर अपनी साँगी चलाकर उनका घोर अपमान किया है—“किरात कुमार पर्णिक ! तुमने युवराज नारिकेल का अपमान किया है, मेरी वस्तु पर अपनी साँगी चलाई है...जानते हो इसका परिणाम ?”

“इसका परिणाम !...” पर्णिक के सुन्दर मुख पर पुनः हास्य की

रेखा नृत्य कर उठी—“क्या हो सकता है इसका परिणाम ! आप ही बताने का कष्ट कीजिये...चिर कृतज्ञ रहूँगा मैं...”

युवराज की देदीप्यमान मुख-श्री म्लान पड़ गई, युवक को ब्यंगोद्भूत बातें सुनकर । उन्हें ऐसा लगा, मानों किरातकुमार के वेश में कोई देव उनकी परीक्षा लेने भूतल पर आ उतरा हो—नहीं तो एक किरातकुमार में इतना साहस कहाँ !...

“मुझे आश्चर्य है...” पर्णिक दो पग आगे बढ़ आया—“....कि युवराज ने अपने राजप्रासाद की सुखमयी गोद त्यागकर इस कंटकाकीर्ण बनस्थली में विचरण करना कैसे स्वीकार कर लिया एवं निरीह बन्ध-पशुओं पर अपनी अतुलित शक्ति का उपयोग करना किस प्रकार उचित समझा !”

युवराज निश्चल खड़े रहे । केवल एकबार उन्होंने आश्चर्य एवं क्रोधपूर्ण दृष्टि पर्णिक पर डाली ।

“क्या युवराज के लिये आमोद-प्रमोद की वस्तुओं का राजप्रासाद में इतना अभाव हो गया कि उन्हें इस भूखंड में आकर अपने मनोरंजनार्थ बन्ध-पशुओं का बध करना पड़ा ! क्या युवराज के दयार्द्र हृदय में यह अन्यायपूर्ण कार्य न्यायोचित जँचता है !”

न्याय !...क्या अब पुष्पपुर के युवराज को एक किरातकुमार से न्याय की दीक्षा लेनी पड़ेगी ! युवराज क्रोध एवं क्षोभ से काँप उठे—“तुम्हारी बातें अभद्रोचित हैं किरातकुमार ! अच्छा हो कि तुम अपने सुकुमार मुख से ऐसे अप्रिय वाक्य न निकालो । युवराज की सहनशीलता का सीमोल्लंघन कर रही हैं तुम्हारी बातें ।”

“हम दरिद्र हैं । हमें भोजन के लिये कन्दमूल भी दुर्लभ है । यदि हम अपनी लुधा के शमनार्थ ऐसे निकृष्ट मार्ग का अवलम्बन करें, बन्ध-पशुओं का बध करें, तो वह क्षम्य हो सकता है । मगर आप !...आपको लुधा लगने पर मणि मुक्ताओं की थालियाँ मिल सकती हैं, निद्रा लगने पर पुष्पशैथ्या प्रस्तुत हो सकती है, तृष्णा लगने पर सुधारस पान करनेको

मिल सकता है...यदि आप ऐसा घृणित कार्य केवल अपने हेतु मनोरंजन की तृप्ति के लिये करें, तो वह क्षम्य नहीं हो सकता....नहीं हो सकता क्षम्य युवराज !...”

“युवराज नारिकेल तुम्हारी इन अनुचित बातों का उत्तर कृपाण से देना चाहते हैं—सावधान !” युवराज ने कटि प्रदेश से लटकती हुई कृपाण खींच ली।

“मैं प्रसन्न हूँ...युवराज को विदित हो कि पर्णिक की माता ने उसे मरना सिखाया है, जीना नहीं...”

दोनों विकट प्रतिद्वन्द्वियों के कृपाण भ्रज से एक दूसरे से जा लगे। नीरव वनस्थली कृपाण के भयावने शब्दों से भ्रुकृत हो उठी—भ्रज ! भ्रज !! पास के वृक्षों पर बैठे हुए पक्षीगण फटफटा कर दूर उड़ चले। वायु के प्रबल वेग से काँप कर एकाएक पत्तियाँ निश्चल हो गईं। दानवा-कृत मेघों के हटजाने से भुवन भास्कर का देदीप्यमान मुखमण्डल चमचमा उठा और वे अपने प्रज्वालित नेत्रों द्वारा उन दोनों समययस्क युवकों का अद्भुत युद्ध-सम्मिलन देखने लगे। स्वर्णिम किरणों के पड़ने से दोनों के कृपाण 'वचित्र रूप से चमक रहे थे और उसके आलोक से दोनों के प्रस्वेदाच्छन्न मुख अतीव प्रतिभाशाली दृष्टिगोचर होते थे।

“परिहास नहीं है...पर्णिक को विजय करना परिहास नहीं है युवराज !...” पर्णिक का कृपाण तीव्र वेग से युवराज पर प्रहार करने को लपका। युवराज ने पैतरा बदला, जरा सा झुक और विद्युत जैसी चपलता के साथ उन्होंने पर्णिक का वार विफल कर दिया।

“अब तुम बचना वीर युवक !”—युवराज ने अपने कृपाण का भरपूर हाथ पर्णिक पर चलाया, मगर आश्चर्य कि वह वीर किरात-पुत्र उस अचूक लक्ष्य से परे जा रहा, केवल उसके मणिवन्ध पर जरा-सी चोट आई।

“तुम अद्भुत हो किरात कुमार !”—युवराज आश्चर्यचकित हो उठे—“नहीं तो तुम्हारे मणिवन्ध पर लगा हुआ यह तनिक-सा घाव,

तुम्हारे वक्ष पर होता, विकगल आकार धागण किये हुए।”—युवराज ने पर्णिक के वाग का प्रत्युत्तर दिया—“मुझे आश्चर्य है—घोर आश्चर्य, कि इस वन्य-प्रदेश में रहते हुए इतना अच्छा शस्त्र-संचालन तुमने किस प्रकार सीखा ?”

“यह मेरी माता जी की कृपा है युवराज ! उन्होंने ही मुझे शस्त्र-सञ्चालन की शिक्षा दी है...”

“धन्य हैं तुम्हारी माता जी !”—

“केवल मेरी ही माता नहीं, आपकी भी माता, संसार के प्रत्येक प्राणी की माता होने योग्य हैं वे...परन्तु...आप अप्रतिभ होते जा रहे हैं युवराज !...युद्ध में अतत्परता क्यों दिखा रहे हैं ?”—पर्णिक को आश्चर्य हुआ, यह देखकर कि युवराज का शस्त्र-संचालन गति धामी पड़ती जा रही है और भय है कि कहीं पर्णिक का कृपाण उनपर सांघातिक आक्रमण न कर बैठे ।

बातचीत की शृङ्खला में फँसकर अभी तक पर्णिक को दृष्टि युवराज के मस्तक पर के घातक घाव की ओर नहीं गई थी। इस समय भी उम घाव से रक्तस्राव हो रहा था, साथ ही युवराज की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। क्रमशः उन पर अचेतन्यता के लक्षण स्पष्ट दीख पड़ने लगे और कुञ्ज ही क्षणों पश्चात् वे अर्द्ध मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। पर्णिक ने दौड़कर उन्हें उठाया—“युवराज !...” और अब पर्णिक ने युवराज के मस्तक पर का वह प्रलयंकर घाव देखा ।

“मेरी चिन्ता न करो...” युवराज शिथिल वाणी में बोले—
“तुम्हारी माता तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होंगी। तुम जाओ !...मेरी चिन्ता न करो, मेरा कोई पायक आता ही होगा—नहीं तो जम्बुक तो अवश्य आ जायगा”—

“मुझे आशा है कि युवराज मुझे क्षमा कर देंगे—क्षमा ही तो आप जैम लोगों का भूषण है—है न युवराज !”—पर्णिक ने कहा । युवराज ने अन्यमनस्कता से केवल अपना मस्तक हिला दिया । पर्णिक

ने आगे झुककर उस मृत बाराह को उठा लिया और युवराज को अभिवादन कर जाने लगा ।

“किरातकुमार !”—युवराज ने पुकारा, और चार पग आगे बढ़े हुए पर्णिक को पुनः लौटना पड़ा—“क्या युवराज ने मुझे पुकारने का कष्ट किया है ?” उसने पूछा ।

“हाँ !...मैं चाहता हूँ कि हमारी इस प्रतिद्वन्द्विता का आज ही अन्त न हो जाय । कम से कम तब तक, जब तक कि हम लोगों के बला-बल का पूर्णतया निर्णय न हो जाय, हम लोग प्रतिद्वन्द्वी ही रहेंगे । यदि महामाया की कृपा रही तो शीघ्र ही हम दोनों किसी स्थल पर पुनः मिलेंगे...”

“मिलेंगे अवश्य युवराज !...हमारे हृदय में इस प्रतिद्वन्द्विता की अग्नि सदैव प्रज्वलित रहेगी, और मेरा दृढ़ विश्वास है कि अत्यन्त शीघ्र हम पुनः मिलेंगे और तब हमारे बलाबल का निर्णय हो जायगा” पर्णिक ने कहा । युवराज बोले—“जैसी महामाया की इच्छा ! अब तुम जा सकते हो ।”

युवराज पर्णिक की ओर तब तक देखते रहे, जब तक कि उसकी छाया सघन वृक्षावलि के श्यामल अंचल में जाकर विलीन न हो गई । युवराज ने अपने मस्तक पर हाथ फेरा । मस्तक से रक्त की धारा अविराम गति से प्रवाहित हो रही थी । रक्त निस्सरण से युवराज की शक्ति क्षीण हो चली थी ।

दूर पर के वृक्षों की शाखा प्रशाखायें जोरों से हिल उठीं । कितने ही वन्य-पक्षी चीं-चीं करते हुए भाग खड़े हुए, मानों कोई भयानक जीव उस भूखंड में आ गया हो ।

उसी समय किसी भयानक बनमानुष की गगन भेदी चिंगाड़ युवराज के कानों में पड़ी । न जाने क्यों युवराज हर्षोत्फुल्ल हो उठे । उस भयंकर चिंगाड़ को सुनकर भयभीत होना तो दूर रहा । वे स्वतः ही बड़बड़ा उठे—“जम्बुक आ गया—आ गया जम्बुक !...” वे हर्षातिरेक

में उठकर खड़े हो गये, परन्तु दूसरे ही क्षण उनके शिथिल पैर लड़-खड़ाये और वे चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़े। उनका मस्तक एक शिला से टकरा गया। घाव में दुहरी चोट लगी और वे पूर्णतया चेतना हीन हो गये।

कुछ क्षण पश्चात् एक भयानक जन्तु उस स्थल पर आ उपस्थित हुआ—एक दुर्दान्त बनमानुष—जिसके काले शरीर पर काले भूरे बाल थे, जिसकी भयंकर आकृति, जबड़े से बाहर निकले हुए बड़े बड़े दाँत, छोटे छोटे प्रज्वलित नेत्रद्वय एवं लम्बे-लम्बे हाथ के तीखे नख, भय उत्पन्न कर रहे थे—ऐसा ही एक बनमानुष खड़ा था उस स्थल पर अपनी छोटी-छोटी किन्तु समझदार आँखों से युवराज को घूरता हुआ। कुछ क्षणों तक वह भयानक जन्तु अपने पिछले पैरों पर खड़ा हुआ इधर-उधर न जाने क्या देखता रहा, पुनः धीरे-धीरे चेतनाहीन युवराज की ओर बढ़ने लगा। युवराज के पास आकर वह भूमि पर बैठ गया। एक बार उसने युवराज को हिला-डुला कर देखा, पुनः उनके मस्तक के घाव का निरीक्षण किया। उस घाव को देखकर उसने ऐसी आकृति बनाई, मानों मन ही मन कुछ सोच रहा हो अथवा युवराज के मस्तक का वह घाव देखकर उसे महान् दुख हुआ हो। उसने अपनी लम्बी खुरदरी जिह्वा बाहर निकाली और उससे युवराज के मस्तक का वह घाव चाटने लगा। कुछ देर तक ऐसा करने से रक्तश्राव रुक गया। तत्पश्चात् उस भयानक जन्तु ने युवराज का बहुमूल्य मुकुट-बन्ध फाड़कर उसी से उनके मस्तक में एक पट्टी बाँध दी।

युवराज का अश्व अभी तक चुपचाप खड़ा था। उस भयानक बनमानुष को देखकर वह तनिक भयभीत न हुआ था, मानों उसे निःशयप्रति देखने का वह अभ्यस्त हो। बनमानुष ने चेतनाहीन युवराज को अपने बलिष्ठ भुजाओं पर उठा लिया और अश्व के पास आया। उसने बागडोर सीधी की, फिर अपने भारी हाथों द्वारा अश्व की पीठ थपथपाई। अश्व हर्षातिरेक से हिनहिना उठा, मानों उस भयानक जन्तु

का थपथपाना उसे बहुत भला लगा हो उस समय रक्तरंजित लालिमा पश्चिमाकाश पर नृत्य कर रही थी। मन्द गीतगामी पवन वृक्ष के पल्लवों का मुख-चुम्बन करने में 'तल्लीन था।'

× × × ×

पर्णिक ने अपनी पीठ पर का गुस्तर भार भूमि पर रखा, फिर अपनी माता की ओर दृष्टिपात किया, जो इस समय झोंपड़े के द्वार पर बैठी हुई, उसी की प्रतिज्ञा कर रही थी। सामान्य किरात स्त्रियों के समान उसके मुख से मूढ़ता एवं दीनता नहीं टपकता थी। बहुमूल्य वस्त्र न धारण किये रहने पर भी उसके मुखमण्डल पर प्रतिभा की रेखा विद्यमान थी।

“कितनी देर से प्रतीक्षा कर रही हूँ—कहाँ ये वस्त्र ?”—पूछा पर्णिक की माता ने।

“क्या कहूँ माता जी ! यहाँ से कई योजन दूर चला गया था। एक प्रतिद्वन्दी स भेंट हो गई...” पर्णिक ने श्रम की श्वांस खींची।

“क्या पराजित होकर आ रहे हो ?...अपनी माता के श्वेतांचल पर कलंक कालिमा निखेर कर आये हो ?”—

“नहीं माता जी ! तुम्हारा पुत्र कभी पराजित हुआ है ?...तो फिर आज कैसे पराजित होया ?...मगर तुम्हारा मुख अप्रतिभ क्यों है माता जी !...”

उसकी माता कुछ न बोली। एकबार उसने सामने की ओर दृष्टि डाली। किरातों के सहस्रो झोंपड़े एक पंक्ति में लगे हुए थे। कितने ही किरात बालक इधर उधर आमोद प्रमोद में तल्लीन थे। उसकी माता ने एक दार्ढ्य निश्वांस ली—उस निश्वांस में निहित थी हार्दिक बेदना का प्रखरतर प्रतिरूप।

सन्ध्या का आगमन जैसे उलझनयुक्त एक गूढ़ समस्या है। दिन का देदीप्यमान प्रकाश हारा थका, अपनी सहज वेदना का भार वहन करता हुआ, रात्रि की भयानक कानिमा के अंचल में अपना गोरा-सा मुख छिपा लेता है। दिवस की श्वेतपरी रक्तरंजित प्रदोष का आलिङ्गन करती हुई अनन्त की ओर उड़ जाती है। पुष्पपुर नगरी का पाद-प्रक्षालन करके बहती हुई कालिन्दी सरिता का निर्मल वक्षस्थल एवं श्वेत सुकोमल भागों से युक्त सुमधुर कलकल निनाद, यमने यमने-सा हो जाता है। उसकी हाहाकारमयी वेगवती तीव्र धारार्यें अबाध गति से अग्रसर होना छोड़कर स्थिर हो जाती हैं—निश्चल ! तट पर बैठी हुई बकुल-राशि उड़कर ऊपर वृक्ष की मोटी शाखाओं पर जा बैठती हैं। सन्ध्याकाल की उदासीन मलीनता घनघोर अन्धकार में डूबने डूबने-सी लगती है। रात्रि का भयानक मुख हाहाकार करता हुआ यावत् जगत का ग्रसन कर लेता है। पुष्पपुर राजप्रासाद के समकक्ष में स्थित महामाया के सुविशाल राज-मन्दिर से 'टन्न टन्न' घंटे का शब्द सुनाई पढ़ने लगता है। परन्तु निमेष मात्र में ही क्षितिज के पास से शीतलता की वर्षा करता हुआ एक प्रकाशमान रत्नगोला धीरे धीरे आकाश मंडल को प्रदीप्त करता हुआ अपनी सधामयी ज्योत्स्ना समग्र पुष्पपुर नगरी पर विखेर देता है। निर्मल चन्द्र-ज्योति में वैभवशाली पुष्पपुर चमक उठता है—चमाचम !

पुष्पपुर राजप्रासाद के अन्तर्प्रकोष्ठ में बैठे हुए जम्बूद्वीप के अधीश्वर द्रविडराज युगपाणि किसी प्रगाढ़ चिन्ता में तल्लीन थे। उनके तेजवान प्रतिभा-सम्पन्न नेत्रों के समक्ष किसी वीभत्स घटना के अतीत-चित्र अंकित हो रहे थे और परम तेजस्वी द्रविडराज उन्हीं कष्टदायक विचारों में निमग्न होकर दीर्घ निश्वास ले रहे थे।

चालीस वर्ष गर कर चुकने पर भी उनके अवयव अपूर्व बलशाली एवं उत्साहपूर्ण दृष्टिगोचर होते थे। परन्तु अपने इस जीवन में उन्होंने

क्या क्या दुःख, क्या क्या कष्ट एवं क्या क्या अवहेलनायें नहीं सहन की थीं ! दैवी चक्र प्रारम्भ ही से उनके प्रातकूल चलता आ रहा था, परन्तु उन्होंने अतुलित धैर्य के साथ सब कुछ सहन किया था । शत्रुओं पर विजय पाई थी, प्रजा की रक्षा की थी—अतीव उत्साह के साथ ।

न्याय !..द्रविड़राज युगपाणि का न्याय अटल था । उनके मुख से निकले हुए सभी वाक्य न्याय के प्रतीक होते थे । उनके किसी कार्य ने, उनके किसी वाक्य ने, उनके किसी आचरण ने, न्याय का उल्लंघन न किया ।

द्रविड़राज युगपाणि बहुत समय तक प्रगाढ़ चिन्ताभूत होकर बैठे रहे । प्रकोष्ठ के प्राङ्गण में उदय होते हुए चन्द्र की एक रजत-रेखा आकर नृत्य कर रही थी । सुचित्रित कृष्ण पाषाण पर चारुचन्द्रिका का वह कल्लोल ऐसा था मानो स्वर्ग का कोई दिव्य ज्योति आकर वहाँ पर अठखेलियाँ कर रही हो ।

प्रकोष्ठ के वहिर्प्रान्त में भारी चरणपादुका का खड़खड़ शब्द सुनाई पड़ा । दूसरे ही क्षण द्वारपायक ने आकर निवेदन किया—“श्री महा पुजारी जी पधारे हैं ।”

द्रविड़राज के मस्तक पर चिन्ता की रेखायें खिंच आई—“ऐसे असमय में महापुजारी जी ने क्यों कष्ट किया ?”—वे बोले—“अच्छा ! भेज दो उन्हें”—

पुष्पपुर राजप्रासाद से मिला हुआ महामाया का राज मन्दिर है । महापुजारी पौत्तालिक महामाया के अनन्य उपासक एवं धर्माचार्य, राजगुरु हैं । राज्य के सभी पदाधिकारी उनकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं । स्वयं द्रविड़राज युगपाणि में भी इतना साहस नहीं कि वे महापुजारी के आयसु की अवहेलना कर सकें । दीर्घाकार गौर वर्ण, सुविशाल मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाये हुए महापुजारी पौत्तालिक के मुख से एक अपूर्व तेज प्रतिभासित होता है । गले में बड़ी बड़ी रुद्राक्ष मालायें, शरीर पर स्वर्ण-खचित पीताम्बर एवं चरणों में हस्तिदन्त

पादुका—वास्तव में वे पुजारी थे। उनके मुख से अविच्छिन्न प्रतिभा प्रस्फुटित होती थी, मानों महामाया की समग्र तैजराशि उनके नेत्रद्वय द्वारा यावत् जगत का निरीक्षण कर रही हो।

द्रविड़राज ने महापुजारी के चरण छुए। महापुजारी ने 'आयुष्मान भव' कहकर उनकी मंगल कामना की, तत्पश्चात् वे द्रविड़राज की शैय्या पर आकर बैठ गये। द्रविड़राज भी पैताने बैठकर राजगुरु के आशा की प्रतिज्ञा करने लगे।

“श्री सम्राट का मुख मंडल अमित, क्लान्त एवं प्रतिभाहीन क्यों दृष्टिगोचर हो रहा है ?”—महापुजारी ने पूछा—“क्या किसी प्रगाढ़ चिन्ता ने श्री सम्राट के हृदय लोक पर अपनी कालिमा बिखेर दी है या राज्य-संचालन में कोई दुरुह बाधा आ उपस्थित होने के कारण इतने व्यग्र हो रहे हैं !...”

“कुछ नहीं है...” द्रविड़राज ने किंचित हास्य करने का व्यर्थ प्रयत्न किया—“यह सब कुछ नहीं है महापुजारी जी ! मेरे हृदय में कोई चिन्ता, कोई व्यग्रता, कोई कष्ट नहीं है और न तो राज्य पर ही कोई बाधा उपस्थित हुई है। सब कार्य पूर्ववत् सुचारुरूप से संचालित हैं। प्रातःकालीन सूर्य की स्वर्णिम आभा, हिमराज के हिमाच्छादित उच्च शिखरों पर कल्लोल करती हुई पुष्पपुर निवासियों के हृदय-प्रदेश में एक अनिवर्चनीय आनन्दोल्लास की सृष्टि कर देती है। सन्ध्याकाल में हिमराज के चंचल का आलिंगन करके आता हुआ सुखद समीर शरीर का सम्पर्क कर दिवस का सारा परिश्रम अपने साथ उड़ा ले जाता है। रात्रि में पत्नीगण अपने नीदों में विश्राम करते हैं, यावत् जगत सुखद निद्राभूत होकर स्वप्न-संसार में विचरण करता है...” कहते कहते सम्राट ने महापुजारी के प्रतिभायुक्त मुख पर अपनी दृष्टि डाली। महापुजारी की आकृति गम्भीरता धारण किये हुए थी—“सभी कार्य तो यथावत् चल रहे हैं। फिर आप ऐसा प्रश्न क्यों करते हैं महा-

पुजारी जी ! क्या आपके दिव्य चक्षुओं को किसी प्रलयकारी अनिष्ट का आभास मिला है ?”

“सम्भव है !...अनिष्ट की आशंका सम्भव है श्री सम्राट् !... परन्तु जाने दीजिये इन सब कष्टदायक बातों को । समय पड़ने पर उचित प्रबन्ध किया जा सकता है...आप अस्वस्थ हैं । सान्ध्योपासन में भी आप सम्मिलित न हो सके...”

“सान्ध्यपूजन हो गया क्या...” अभी तक सम्राट् को यह भी पता न था कि उस समय एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी है !

“सान्ध्योपासन तो बहुत पहले ही समाप्त हो चुकी श्री सम्राट् !... परन्तु शोक ! न तो आपही ने पदार्पण करने का कष्ट किया और न तो श्री युवराज ने ही...भला यह बेला शयन-कक्ष में रहने का है ! अवश्य आपके अन्तस्तल में कोई गुप्त व्यथा है श्री सम्राट् !...”

उसी समय द्वार पायक ने पुनः प्रवेश कर सम्राट् एवं महापुजारी को अभिवादन किया—“प्रातःकाल से ही श्री युवराज आखेट को गये, अभी तक नहीं लौटे—” उसने विनम्र शब्दों में कहा ।

“अभी तक न लौटा ?”—द्रविडराज अस्त-व्यस्त शब्द में बोल उठे ।

“अभी तक !” महापुजारी का शरीर आश्चर्य में कम्पायमान हो उठा—“जम्बुक तो साथ में है न ?”

“जी हाँ !...” पायक ने उत्तर दिया ।

“मगर वह बन्धुपशु कर ही क्या सकता है ?”—सम्राट् बोले ।

“बन्धुपशु ?” उत्तेजित स्वर में महापुजारी बोले—“आप उसे निरा बन्धुपशु ही समझते हैं श्री सम्राट् !...मगर कदाचित् आप भूले जा रहे हैं कि महामाया के प्रसाद से मानवों के सम्पर्क में रहते रहते, अब वह वनमानुष भी मानव हो गया है !...कहाँ का बन्धुपशु !...” महापुजारी हँस पड़े—“आप निश्चिन्त रहें । महामाया की माया से

जम्बुक के रहते श्री युवराज पर कोई अनिष्ट आ पड़ने की आशंका नहीं...”

“हृदय नहीं मानता महापुजारी जी !”—द्रविड़राज युगपाणि ने दीर्घ श्वास ली—“सब कुछ खो चुका हूँ, अब यदि उसे भी खो बैटूँगा, तो कैसे धैर्य रख सकूँगा । इस पृथ्वी पर अब अकेला ही तो हूँ—केवल युवराज है, मेरे नेत्रों की ज्योति !”

“व्यथित हो गये श्री सम्राट् !...इस प्रकार व्यथित होना एक सम्राट् के लिये अशुभ-सूचक है । ऐसे विशाल हृदय में एक तुच्छ भावना को स्थान देना हेय है, घृणित है...भला कौन कह सकता है कि द्रविड़राज युगपाणि इस नश्वर जगत् में एकाकी हैं ! जम्बूद्वीप के अधीश्वर होकर आप ऐसी अस्तुत्य बात अपने मुख पर लाते हैं ! जम्बूद्वीप की सारी प्रजा आपकी सन्तान है, द्वीप का सारा ऐश्वर्य आपकी सम्पत्ति है और द्वीप की सारी प्रकृति-प्रदत्त सुषमा आपके चरण-कमलों पर निष्ठावर होने को प्रस्तुत है श्री सम्राट्...फिर क्यों आप इस प्रकार अधीर हो रहे हैं !”—

“महापुजारी जी !...”

“श्री सम्राट् !...”

“मुझे बचाइये...मेरी रक्षा कीजिये महापुजारी जी !”—द्रविड़राज व्यथित स्वर में बोले—“मैं पथ-विमुख हो रहा हूँ, मुझे शक्ति प्रदान कीजिये...”

“कौन सी ऐसी दुर्भेद्य शक्ति है, जो आपको पथविमुख कर रही है श्री सम्राट् !...महापुजारी के रहते श्री सम्राट् का हृदय सदैव निर्धारित मार्ग पर अग्रसर होगा...”

“पूर्वस्मृति की चिनगारी भीषण दावानल बनकर मेरा रक्त शोषण कर रही है । आज कई दिनों से राजमहिषी त्रिधारी की स्मृति मेरे अन्तर्पट से उतरती ही नहीं है, महापुजारी जी ! मैंने नहीं जाना था कि आज

से बीस वर्ष पूर्व किये हुए कार्यों के लिये मुझे अब पश्चात्ताप करना होगा...”

“श्री सम्राट् !...” महापुजारी की मुखाकृति कठोर हो गई—
“आपको भूल ही जाना होगा इन सारी अनिष्टकारी बातों को, अन्यथा...” महापुजारी के ललाट पर दुश्चिन्ता की रेखायें खिच आईं। उन्होंने एक दीर्घ श्वास ली—“मैंने आपको इतना दुर्बल-हृदय नहीं समझा था श्री सम्राट् ! क्या अपने ही न्याय के लिये स्वयं आप पश्चात्ताप करेंगे !...अनर्थ ! प्रलय !...” महापुजारी रुके कुछ देर के लिये। उन्होंने आगे बढ़कर द्रविडराज का कम्पित कर पकड़ लिया और उनके मुख पर अपने प्रज्वलित नेत्र स्थिर कर दिये। सम्राट् को ऐसा लगा, मानों महापुजारी की वे क्रूर आँखें उनके अन्तस्थल में प्रवेश करती जा रही हों—“श्री सम्राट् !”—महापुजारी ने पुकारा दृढ़ स्वर में।

“महापुजारी जी !...” सम्राट् का स्वर लड़खड़ा रहा था।

“आपको इन अनिष्टकारी कल्पनाओं से दूर रहना पड़ेगा। विगत घटनाओं को पुनः स्मृति पटपर लाकर प्रलय का आवाहन न किजिये। द्रविडराज का ‘न्याय’ है—हिमराज-सा अटल !...आप न्यथित हैं। ऐसे समय चक्रवाल की आवश्यकता है। मैं उसे अभी भेजता हूँ। वह अपने सुमधुर गायन द्वारा आपके कर्ण-कुहरों में अमृत की वर्षा कर देगा। भूल जायेंगे आप, इन सारी दुश्चिन्ताओं को।”

महामाया के मन्दिर में उपासना के समय नृत्य करने वाली किन्नरी निहारिका के साथी का नाम था चक्रवाल। जब किन्नरी निहारिका महामाया की प्रतिमा के समक्ष अपनी समग्र कलाओं का एकत्रीकरण कर नृत्य करती, तो चक्रवाल अपनी वीणा पर खेलता हुआ अपने सुमधुर गायन द्वारा मोहन उत्पन्न कर देता। जिसप्रकार किन्नरी की नृत्यकला अपूर्व थी, मरणांशुमुख को जीवित करनेवाली थी—उसी प्रकार थी चक्रवाल की गायन कला। वह चारण था। संगीत से द्रविडराज की सेवा करना ही

उसका कार्य था । द्रविड़राज, महापुजारी एवं युवराज आदि सभी विमुख थे उस युवक चारण की गायनकला पर—ऐसा था चक्रवाल !

सम्राट् चुपचाप निश्चल बैठे थे—“बोलिये श्री सम्राट् !.... कहिये !”—महापुजारी बोले ।

“क्या कहूँ महापुजारी जी !”—द्रविड़राज के इन वाक्यों में अन्त-वेदना की अगम राशि निहित थी ।

कहना हो अगर कहो यों, सुनना ही पड़े सभी को ।

आँसू ऐसे बरसाना, घुलना ही पड़े सभी को ॥

उसी समय इस कर्णप्रिय मधुर संगीत से सारा प्रकोष्ठ गूँज उठा । ऐसा लगा, मानों स्वर्ग का कोई किन्नर भू पर उतर आया हो । वायु निश्चल हो गया, पल्लवों ने हिलना बन्द कर दिया, पक्षियों का गुंजित कलरव मधुर नीरवता में परिणत हो गया । केवल, आतै हुए चक्रवाल की वह मधुर गीत-ध्वनि गुंजायमान होने लगी—

हँसने वाले रो देवें, सोने वाले जग जावें ।

निकले जब आह तुम्हारी, जलना ही पड़े सभी को ॥

“लीजिये !...चक्रवाल तो स्वयं इधर ही आ रहा है”—महापुजारीजी ने कहा । उसीसमय पचीस वर्षीय युवक चारण वहाँ आ उपस्थित हुआ । चक्रवाल ने झुककर महापुजारी के चरण छुए एवं द्रविड़राज को अभिवादन किया—“क्या श्री सम्राट् अस्वस्थ हैं !”—उसने विनम्रता से पूछा ।

“तुम अपनी कला द्वारा श्री सम्राट् को स्वास्थ्य प्रदान करो”—कहते हुए महापुजारी प्रकोष्ठ से बाहर चले गये । चक्रवाल ने आगे बढ़कर प्रकोष्ठ में रखी हुई बड़ी-सी वीणा उठा ली । वीणा के तार भंकार उठे, भन्न ! भन्न !! चक्रवाल की सधी हुई अँगुलियाँ वीणा के तारों पर अविश्राम गति से दौड़ चलीं । मधुर भनकार ने हृत्तन्त्री के तारों को झंकृत करना प्रारम्भ कर दिया । प्रकृति काँपने लगी । धवल चन्द्र खिलखिला उठा । दिशायें हँस पड़ीं ।

“अब रहने दो चक्रवाल ! हृदयपट के प्रखर आघात को यह बीणा की झनकार और द्विगुणित कर रही है...”

“क्या श्री सम्राट् को कोई मानसिक व्यथा कष्ट दे रही है !”—
चक्रवाल ने बीणा रखते हुए पूछा ।

“तुम युवक हो...तुम क्या जान सकोगे उस व्यथा की बात !—” सम्राट् के मुख पर व्यथा पूर्ण मुस्कान नृत्य करने लगी ।

“मैं सुनना चाहता हूँ श्री सम्राट् !...आपके व्यथा की कहानी मैं अवश्य सुनूँगा...”

“सुनोगे ?”—द्रविड़राज ने चक्रवाल की ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा—“मेरी व्यथापूर्ण गाथा सुनोगे तुम !...सुनो !...”

चक्रवाल कुछ आगे खिसक आया । द्रविड़राज कहने लगे—“आज से पचीस वर्ष पूर्व...”

×

×

×

×

जी हाँ ! आज से पचीस वर्ष पूर्व, सम्राट् युगपाणि २२ वर्ष के नवयुवक योद्धा एवं प्रतिभासम्पन्न शाशक थे । उस समय द्रविड़राज का संसार हरा भरा एवं सुगन्धित पुष्प-सा प्रस्फुटित था । वे, अपनी धर्मपत्नी राजमहिषी त्रिधारा का अपूर्व प्रेम प्राप्त करते हुए दाम्पत्य-जीवन का उपभोग कर रहे थे । परन्तु बहुत दिनों के व्यतीत हो जाने पर भी, अभी तक उन्हें किसी सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई थी । यही एक कारण ऐसा था, जो राजदम्पति के मधुर मुस्कान युक्त मुखों पर कभी कभी अपनी प्रखरतर कालिमा बिखेर जाता था । यों तो सम्राट् द्रविड़राज भी इस बात के लिए कम चिन्तित नहीं थे, मगर राजमहिषी त्रिधारा की चिन्ता असीम थी । वह रात दिन इसी चिन्ता में गोते लगाते लगाते अत्यन्त दुःखित रहा करती थी । यद्यपि द्रविड़राज राजमहिषी के दुःख का, चिन्ता का कारण पूर्णतया समझते थे, मगर सब व्यर्थ । पुष्पपुर की सारी प्रजा राजदम्पति के इस कष्ट से दुःखी थी ।

पुष्पपुर का सारा अतुलित वैभव एवं श्री सम्पन्न प्रतिभा फीकी-सी प्रतीत होती थी—बिना एक युवराज के।

कई मास व्यतीत हो गये। वर्षा काल की घनघोर गर्जना करके बरसती हुई सघन घन-राशि, शिशिर की मधुमयी ओस में परिवर्तित हो गई। हिमाच्छादित हिमराज के उच्चतम शिखरों ने नीलाकाश का चुम्बन करते हुए दुग्धवत श्वेत आकार धारण कर लिये। समग्र पुष्पपुर नगरी पर शिशिर ने अपने कलापूर्ण कर्ों द्वारा अगाध सुषमा बिखेर दी।

“राजमहिषी !...” एक रात्रि को जब कि द्रविडराज युगपाणि राजमहिषी त्रिधारा के साथ सुसज्जित शयन-कक्ष में विश्राम कर रहे थे, उन्होंने राजमहिषी के मुख पर प्रसन्नता की प्रोज्ज्वल रेखायें देखीं और उन्हें आश्चर्य हुआ—“आज तुम अतीव प्रसन्न दिखालाई दे रही हो ! तुम्हारे क्लान्त मुख पर इस समय चन्द्रदेव की मधुरिमा नृत्य कर रही है—कारण !...इसका कारण बता सकती हो राजमहिषी !...”

“कारण आप अभी तक नहीं जान सके नाथ !”—राजमहिषी ने द्रविडराज के विशाल वक्ष पर अपना मस्तक टेक दिया—“प्रसन्नता क्यों न हो !...हृदय प्रदेश में अनिर्वचनीय आनन्द की प्रतिभा क्यों न नृत्य करे !...जनशून्य बन प्रदेश में अपनी सुषमा बिखेरने के लिए विधाता ने एक मानव का सृजन किया है। अन्धकारमयी रात्रि का गर्व खर्व करने के लिए एक परमोज्ज्वल शशि इस अवनीतल पर अव-तरित होगा। राजदम्पति की शून्य गोद भरने के लिये महामाया की माया अपना चमत्कार दिखाने वाली है...”

“सत्य कहती हो राजमहिषी !”—आश्चर्यपूर्ण हर्षोल्लास से सम्राट् उछल पड़े—“.....क्या तुम सत्य कहती हो प्रिये ! क्या वास्तव में हमारे नष्टप्राय एवं अन्धकारपूर्ण संसार को अपनी प्रतिभा से प्रोज्ज्वल करने के लिए कोई दैवी शक्ति आ रही है ! क्या सत्त्व ही हमारी सूनी

गोद, कुछ ही दिनों में किसी सुकुमार शिशु के मधुर क्रन्दन से गुञ्जरित होने वाली है ! सत्य कहना राजमहिषी !”

“ऐसा भी कोई असत्य कहता है सम्राट् !...” राजमहिषी ने लज्जा से अपना उज्ज्वल मुख सम्राट की गोद में छिपा लिया । इस समय राजदम्पति को सन्तान के आगमन का अनुभव करके जो आह्लाद हुआ, वह वर्णनातीत था । युगों की प्रतिज्ञा के पश्चात् उनकी गोद भरने वाली थी, उनका वीरान संसार हरित-भरित होने वाला था—तो क्यों न वे हर्ष से चीत्कार कर उठते ।

ज्यों-ज्यों गर्भावस्था के दिन सन्निकट आने लगे, त्यों-त्यों द्रविड़-राज के प्रसन्नता की वृद्धि होती गई ।

×

×

×

×

ग्रीष्मकाल का आगमन हो चुका था । तनिक परिश्रम से ही मस्तक पर प्रस्वेद-राशि एकत्रित हो जाती थी । पवन प्रलयकारी उष्णता का आलिङ्गन किये हुए जगत में स्वच्छन्द विचरण कर रहा था । भुवन-भास्कर की तैजोमयी मुखराशि यावत् जगत पर अग्नि-वर्षा कर रही थी । समग्र संसार में भयानक भूभावात-सा फैल रहा था । घनघोर वनस्थली में खड़े हुए पुष्पहीन सूखे वृक्ष लू का मुख चुम्बन करते हुए अद्भुत साँय साँय का शब्द उत्पन्न कर रहे थे ।

“अब तो पवन की उष्णता से आगे नहीं चला जाता पायक ! हमलोग न जाने किस भयानक वन में आ पहुँचे । आओ, थोड़ा रुक-कर विश्राम कर लिया जाय । इस पर्वटी वृक्ष के नीचे अच्छा होगा”—द्रविड़राज अश्व पर से उतर पड़े । पायक ने भी वैसा ही किया । दोनों घोड़े एक वृक्ष की डाल से बाँध दिये गये । आज प्रातःकाल से ही द्रविड़राज एक पायक के साथ आखेट के लिए इस घनघोर जंगल में आये थे । परन्तु प्रकृति की वह सुखमयी गोद, जो वर्षाकाल में स्वच्छ हरियाली से पूर्ण होकर नेत्रों को सुषमा प्रदान करती थी, इस समय भयानक लू का विचरण-प्रदेश बनी हुई थी ।

एकाएक द्रविडराज चौंक उठे। सन्निकट से ही किसी वन्यपशु के कर्ण-क्रन्दन का स्वर कर्णगोचर हुआ था। सम्राट का हृदय अशांत कौतूहल से भर उठा। वे पायक को चुपचाप पीछे आने का संकेत कर उस ओर बढ़ चले, जिधर से वह क्रन्दन-स्वर सुनाई पड़ रहा था।

एक झुरमुट था—मगर प्रकृति के भयानक कर्मों द्वारा एक दम बीरान, उजड़ा हुआ—उसी में एक स्त्री-बनमानुष पड़ी हुई प्रसव-पीड़ा से छटपटा रही थी। उसके मुख से निकली हुई प्रासविक पीड़ा-जनित कर्ण-क्रन्दन अतीव हृदयद्रावक था। न जाने किस दैवी प्रेरणा से सम्राट का हृदय उस भयानक जीव की प्रसव-पीड़ा देखकर काँप उठा—
“उफ ! आज प्रातःकाल से ही राजमहिषी भी प्रसव-पीड़ा से व्यथित हैं, परन्तु....”

उस स्त्री-बनमानुष की प्रसव-पीड़ा बढ़ गई और सम्राट् के देखते ही देखते उसने एक बनमानुष को जन्म दिया। उसी समय पास ही से किसी व्याघ्र के घोर गर्जन का स्वर सुनाई पड़ा और द्रविडराज के कार्मुक सम्हालने के पूर्व ही वह व्याघ्र टूट पड़ा प्रसव-पीड़ा द्वारा चेतना हीन उस स्त्री-बनमानुष पर और भ्रूणभोर दिया उसकी गर्दन अपने विकराल दाँतों द्वारा पकड़ कर।

समय से कुछ ही देर बाद द्रविडराज का बाण विद्युत वेग से जाकर उस व्याघ्र के पंजर में लगा। व्याघ्र के मुख से भयानक गर्जना निकल-कर शून्य बनस्थली को गुञ्जायमान कर उठा और दूसरे ही क्षण वह कंटकाकीर्ण भूमि पर पड़ा था—निर्जीव होकर।

द्रविडराज को न जाने क्या हो गया था। वे आगे बढ़े और जाकर उस स्त्री-बनमानुष के पास बैठ गये। व्याघ्र के भयानक दाँत उसकी गर्दन में पूर्णतया प्रवेश कर गये थे और इस समय वह कुछ ही क्षणों की मिहमान थी। उसके नेत्रों की ज्योति क्षीण हो चली थी—फिर भी द्रविडराज को उसने देखा, परन्तु वह भयभीत न हुई। उसने एकबार कर्णदृष्टि से अपने नवजात शिशु की ओर देखा, जिसे वह अभी-

अभी ही छोड़कर सदैव के लिए चली जाने वाली थी। द्रविड़राज ने आगे बढ़कर बनमानुष का वह शिशु अपनी गोद में उठा लिया। उन्हें ऐसा लगा, मानो आज वस्तुतः उनकी गोद भर गई हो। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। किसी ने देखा या न देखा, मगर उस मरती हुई स्त्री-बनमानुष के नेत्रों से भी कई अश्रुकण टपटप चूकर पृथ्वी का सिंचन कर रहे थे और कुछ ही क्षणों में उसने अपनी अन्तिम श्वास खींच ली। सम्राट् वास्तव में रो पड़े, मानों उससे उनका युग-युग का साथ रहा हो।

जिस समय बनमानुष के नन्हें से शिशु को लिए हुये द्रविड़राज पुष्पपुर आये, तो उन्होंने सुना कि राजमहिषी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया है। समग्र पुष्पपुर नगरी में युवराज का जन्म सुनकर हर्षोल्लास एवं उत्सव मनाये जा रहे थे।

परन्तु द्रविड़राज को यह सुनकर महान् आश्चर्य हुआ कि राजमहिषी ने भी ठीक उसी समय पुत्र जनन किया था, जिस समय वे घनघोर जंगल के मध्य उस शिशु बनमानुष का जन्म देख रहे थे। युवराज एवं वह शिशु बनमानुष, दोनों एक ही समय इस जगतीतल पर अवतरित हुए थे। एक ही समय दोनों ने इस शशि श्यामला भूमि का सम्पर्क किया था।

X

X

X

दिवस एवं रात्रि की श्वेत एवं श्याम अप्सरायें आकर यावत् जगत पर अपनी सुषमा विखेरती रहीं। समय का चक्र घूमता चला गया। पलक मारते भर में दो वर्ष व्यतीत हो गये। तृतीय वर्ष में पदार्पण करते ही युवराज का नामकरण संस्कार हुआ। महापुजारी पौत्तालिक ने युवराज का नाम नारिकेल रखा। वह शिशु बनमानुष, जिसे द्रविड़राज बन से उठा लाये थे, अबतक बाल-युवराज का अनोखा सहचर बन चुका था। वह सदैव युवराज के साथ रहता। महापुजारी ने उसका नाम 'जम्बुक' रखा और दोनों को आशीर्वाद देते हुए कहा—“तुम दोनों इस संसार में

एक साथ आये हो। महामाया तुम्हारी मैत्री को अनन्त काल तक सुदृढ़ बनाये रखें।”

युवराज और जम्बुक की मित्रता बढ़ती ही गई। युवराज तो अभी बालक थे, अपनी तोतली भाषा में केवल दो चार शब्द बोल लेते थे—मगर जम्बुक अब तक बड़ा हो चुका था। वह युवराज को अपने घुटनों पर बैठाकर आमोद-प्रमोद करता, उन्हें गोद में लेकर टहलता एवं वृत्तों पर कूद फाँद कर युवराज के लिए पत्रपुष्प ला देता। जम्बुक बनमानुष था, परन्तु जन्मदिन से ही मनुष्यों का सम्पर्क होने से उसमें मानवी-बुद्धि का संचार हो गया था। वह अधिकतर अपने पीछले पैरों पर खड़ा होकर चलता था। राज प्रासाद के अन्तःपुर में जाकर रत्नखँचित सिंहासन पर बैठा करता था।

महापुजारी पौत्तालिक युवराज की मंगलकामना के लिये महामाया से प्रार्थना करते थे और महामाया के चरणों पर चढ़ाया हुआ कुंकुम (रोली) लाकर युवराज के मस्तक पर लगाते थे—ताकि युवराज को किसी भावी विपत्ति की आशंका न रहे। वह नित्य का, प्रतिदिन का कार्य था। प्रातः काल होते ही राजमन्दिर का घंटा बोलने लगता। द्रविड़राज युवराज को गोदी में लेकर महामाया के मन्दिर में उपस्थित होते। राजकिन्नरी नृत्य करती हुई महामाया की आरती उतारती। महापुजारी पौत्तालिक विधिवत पूजन करते एवं महामाया के चरणों पर स्वर्णपात्र में भरा हुआ कुंकुम अर्पित करते। पूजन समाप्त हो चुकने पर वही कुंकुम बाल युवराज के मस्तक पर लगा दिया जाता था। भोले युवराज की देदो-प्यमान मुख-श्री कुंकुम की लालिमा से और भी प्रोद्भासित हो उठती थी।

कई मास पश्चात्, एक दिन जब कि द्रविड़राज युगपाणि राजमहिषी त्रिधारा के शयन-प्रकोष्ठ में विश्राम कर रहे थे, तो राजमहिषी से यह सुन कर कि कुछ ही मास पश्चात् उन्हें एक दूसरे सन्तान की प्राप्ति होने वाली है, उनके हर्ष का पारावार न रहा।

“कितने सौभाग्य का विषय है प्रिये !”—द्रविड़राज कहने लगे—

“हम सन्तान के लिए लालायित रहते थे....अब एक और सन्तान हमें प्रसन्नता प्रदान करने आ रही है.....”

“परन्तु इस बार न जाने क्यों मेरा हृदय उद्विग्न रहता है प्राण !... पता नहीं क्या होगा !...”

“किसी प्रकार की दुश्चिन्ता में न पड़ो साम्राज्ञी !”—द्रविड़राज ने अपने कंठ में पड़ा हुआ बहुमूल्य रत्नहार निकाल कर राजमहिषी के गले में पहना दिया—“यह लो ! प्राचीन रुढ़ियों से चला आता हुआ परम पवित्र कल्याणकारी रत्नहार तुम पहनो । यह परम मंगल कारक रत्नहार समस्त विघ्नवाधाओं से तुम्हारी रक्षा करेगा । यह हमारे प्राचीन महापुरुषों द्वारा निर्मित रत्नहार है—इसकी अवहेलना, इसका अपमान न करना—नहीं तो अनिष्ट की सम्भावना है...इसका अपमान करने पर राजदंड का भागी होना पड़ेगा...”

दूसरे दिन जिस समय महामाया का पूजनोत्सव समाप्त हुआ, तो महापुजारी ने द्रविड़राज के कंठ प्रदेश में वह पवित्र रत्नहार न देखकर पूछा—“श्रीसम्राट ! आज वह पवित्र रत्नहार आपके कण्ठप्रदेश में नहीं उपस्थित है । क्या आपने उसे कहीं रख दिया है !.....”

“राजमहिषी को पुनः सन्तान की प्राप्ति होने वाली है—मैंने उनकी मंगल कामनार्थ वह पूजनीय रत्नहार उन्हें दे दिया है और उनसे कह दिया है कि इस रत्नहार की तनिक भी उपेक्षा न करना.....”द्रविड़राज ने कहा ।



व्योम के प्राच्य दुकूल पर से एक प्रकाशमान स्वर्णगोला क्रमशः ऊपर उठकर संसार पर अपनी तेजोन्मयी प्रतीभा एवं प्रखर प्रकाश बिखेरने लगा । दिवस के शुभ्र प्रकाश में पुष्पपुर राजप्रासाद की चित्र-विचित्रित दीवालें कल्लोल करती सी प्रतीत होने लगीं । महामाया के मन्दिर का उच्चतम शिखर जो विविध कलाकारों द्वारा स्वर्ण एवं मणि-मुक्ताओं से निर्मित था, भुवनभास्कर की प्रोदभासित मुख-राशि का संयोग पाकर झलक उठा—झलाझल । हिमराज के हिमाच्छादित शिखर ऋष्णाता से पिघल पिघलकर, कलकल निनाद करते हुए छोटे-छोटे नद-नारों में परिवर्तित होने लगे ।

जम्बुक, वह शिशु-वनमानुष अब कुछ और बड़ा हो चुका था । यद्यपि इस समय उसकी अवस्था केवल ३ वर्ष की थी, फिर भी वह अद्भुत बुद्धिमान एवं चंचल प्रतीत होता था । युवराज के साथ बाल-क्रीड़ा करना छोड़ कभी-कभी वह किसी अश्व पर चढ़ जाता और एक सुचतुर अश्वारोही के सदृश अश्व को दौड़ाने लगता—कभी युवराज को गोदी में लेकर इधर से उधर दौड़ता—कभी राजप्रासाद के अन्तर्प्रकोष्ठ में जाकर राजमहिषी त्रिधारा के साथ क्रीड़ा करने में निमग्न हो जाता । राजमहिषी उसे उसी प्रकार चाहती थीं, जिस प्रकार युवराज को । यद्यपि युवराज और जम्बुक इस संसार में एक ही दिन और लगभग एक ही मुहूर्त में उत्पन्न हुए थे—परन्तु जम्बुक बहुत शीघ्रतापूर्वक बढ़ रहा था, क्योंकि वह एक भीमकाय वनमानुष का शिशु था । मनुष्यों के सम्पर्क में रहने के कारण उसके जंगली विचार बहुत कुछ दूर हो चुके थे । यद्यपि वह शब्दों का उच्चारण नहीं कर सकता था, फिर भी बहुत-सी बातों को वह भली प्रकार समझ लेता था । युवराज और जम्बुक की मित्रता देखकर यही प्रतीत होता था, मानों दोनों एकाकार होकर इस संसार में आये थे ।

उछलता कूदता हुआ बनराज जम्बुक, न जाने कहाँ से आकर राजप्रासाद के अन्तर्प्रकोष्ठ में जा पहुँचा। राजमहिषी त्रिधारा ने पलंग पर अपने कुल का वही पवित्र रत्नहार उतार कर रखा—हुआ था और स्वयं कदाचित् स्नान करने चली गयी थीं। वहाँ कोई न था। रत्नहार की अद्भुत प्रोज्वलता देखकर जम्बुक का जंगली हृदय आकर्षित हो उठा। उसने आगे बढ़कर अपने खुरखुरे कर्ों द्वारा वह परम पवित्र रत्नहार उठा लिया। एक क्षण तक वह उसकी ओर अनिमेष दृष्टि से देखता रहा, पुनः उसने उसे अपने रोमपूर्ण कण्ठप्रदेश में पहन लिया और अन्तर्प्रकोष्ठ से बाहर आकर इतस्तः वृक्षों पर उछलने कूदने लगा।

नियति का चक्र सदैव परिचालित रहता है। भविष्य होकर ही रहता है, द्रविडराज के ऊपर जो भावी संकट आनेवाला था, उसका यह प्रथम चिह्न था। वृक्षों पर इतस्तः क्रीड़ा करता हुआ जम्बुक राज्यप्रकोष्ठ से बहुत दूर आ गया। एक सघन वृक्षलतादि में पहुँचकर वह रुका। उसने गले का रत्नहार उतारकर हाथ में ले लिया और उसे उछाल उछालकर खेल करने लगा। वृक्ष की एक मोटी शाखा पर बैठकर क्रीड़ा करता हुआ वह वन्यपशु क्या जान सकता था कि जिस वस्तु को वह इतना गर्हित समझ रहा है, वह है एक परम पवित्र रत्नहार—जिसकी एक-एक मणि, जिसकी एक-एक मुक्ता प्रबल मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित की गई हैं और जिसका तनिक-सा अपमान प्रलय की सृष्टि कर दे सकता है। इतिहास का वह स्वर्णिम युग था, जब कि मनुष्यों में इतनी शक्ति इतनी श्रद्धा एवं इतना विश्वास रहता था कि वे मन्त्रों के प्रभाव से अप्राप्य वस्तुओं को भी प्राप्त कर लेते थे।

क्रीड़ा करते-करते वह रत्नहार जम्बुक के कर्ों से छूटकर भूमि पर आ रहा। उसी समय जम्बुक की दृष्टि उद्यान में लगे हुए नाना प्रकार के पौधों पर पड़ी, जिनपर मधुर गन्धयुक्त पुष्प विकसित होकर अपनी मधुर गन्धराशि पवन को प्रदान कर रहे थे। दूसरी ओर अगणित फलों के वृक्ष फलकर भूमि का चुम्बन कर रहे थे। जम्बुक भूल गया उस पवित्र

रत्नहार की बात । उसका हृदय उन सुन्दर पुष्पों एवं सुस्वादु फलों को लेजाकर युवराज को प्रदान करने के लिये लालायित हो उठा । वह वृद्ध पर से नीचे उतर आया और उद्यान में से कई पुष्प एवं फल तोड़कर उल्ललता-कूदता हुआ भाग चला राजप्रकोष्ठ की ओर, जहाँ बाल युवराज काष्ठ द्वारा निर्मित गजराज एवं अश्व के साथ क्रीड़ा कर रहे थे ।

जिस समय राजमहिषी त्रिधारा ने विधिवत् स्नान करके अपने शयन-कक्ष में प्रवेश किया, उस समय यह देखकर कि वह परम पवित्र रत्नहार शैय्या पर नहीं है—उनका हृदय प्रबल वेग से कम्पायमान हो उठा । न जाने किस भावी आशंका से उनकी दाहिनी बाँह फड़क उठी । उनके नेत्रों के समक्ष घोर अन्धकार आच्छादित हो उठा । बहुत खोज करने पर भी, जब वह रत्नहार न मिला, तो राजमहिषी की चिन्ता बढ़ चली । वे प्राङ्गण में आई । देखा—जम्बुक कुछ पुष्प एवं फल लाकर युवराज को दे रहा है और युवराज अतीव तन्मयता के साथ उन पुष्पों एवं फलों का निरीक्षण कर रहे हैं ।

नियति का क्रूर एवं भयानक चक्र पुष्पपुर के राजप्रकोष्ठ पर आकर रुक गया था, तभी तो इतनी अव्यतिष्ठ घटनायें हो रही थीं । नियति तो अपने विकराल कर्ों द्वारा द्रविडराज के लिये एक वीरान संसार का सृजन कर चुकी थी—तो वह रत्नहार मिलता ही क्योंकर ? रात्रि में जिस समय द्रविडराज युगपाणि शयनकक्ष में आये, तो उन्हें यह देखकर महान् दुःख एवं आश्चर्य हुआ कि राजमहिषी त्रिधारा का हृदय अत्यधिक व्यग्र एवं चंचल है ।

“राजमहिषी !....प्रिये !...” द्रविडराज ने राजमहिषी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया—“मैं अवलोकन कर रहा हूँ कि तुम्हारी देदीप्यमान मुखश्री इस समय प्रतिभाहीन क्यों हो रही है !....ऐसा क्यों !...देखो ! नभमंडल के उस क्षुद्र चन्द्र का अवलोकन करो—कितना वैषम्य हास्य कर रहा है हमारी दशा पर ! क्या ही व्यंग्यपूर्ण

चन्द्रिका विखेर रहा है !...वह तो लुद्र है, पतति है न !...तो क्या यह परमोज्ज्वल एवं पवित्र भूचन्द्र अपनी आनन्दमयी प्रतिभा एवं सुमधुर हास्य की वर्षा न करेगा ?”—द्रविड़राज ने राजमहिषी के नेत्रों की ओर अनिमेष दृष्टिसे देखते हुए कहा—“...और...यह क्या !...” अकस्मात् द्रविड़राज की दृष्टि राजमहिषी के कंठ प्रदेश में जा पड़ी। वह पवित्र रत्नहार न देखकर उनके आश्चर्य का पारावार न रहा—“...रत्नहार क्या हुआ !...क्या कहीं निकाल कर रख दिया है तुमने !...”

साम्राज्ञी का सारा शरीर भय एवं आवेग से कम्पित हो उठा—“हाँ प्राण ! आज हृदय कुछ अधिक व्यग्र था, अतः मैंने रत्नहार उतारकर यत्नपूर्वक मणिमंजूषा में रख दिया है...” आज तक साम्राज्ञी ने सम्राट से कभी असत्य न कहा था, परन्तु नियति के कुचक्र ने उन्हें ऐसा कहने को बाध्य कर दिया। उन्हें अभी आशा थी कि कदाचित् वह रत्नहार कहीं से मिल जायगा।

“देखना प्रिये ! वह मेरे पूर्वजों द्वारा निर्मित परम प्रभावशाली मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित रत्नहार है। उसका तनिक भी अपमान—अनादर—न हो। उसे महान् यत्नपूर्वक रखना, नहीं तो अनिष्टकारी घटनायें घटित होते देर न लगेंगी...” सम्राट् कुछ क्षण तक रुके, पुनः बोले—“पूर्व पुरुषों के कथनानुसार अब वे क्रूर ग्रह मेरे भाग्याकाश में मड़राये हुए हैं, जिनके कुप्रभाव से मेरा संसार विनष्ट होने वाला है—ऐसा राज्य के प्रधान ज्योतिषी का कथन है। इसीलिए मैं तुम्हें सावधान रहने का आदेश दे रहा हूँ।....” विचारे द्रविड़राज को क्या मालूम कि उन क्रूर ग्रहों ने अपना प्रलयंकर कार्य प्रारम्भ कर दिया है और अब कुछ ही दिनों में...

कुछ दिवस व्यतीत हुए। इस बीच द्रविड़राज ने जब जब राजमहिषी से उस पवित्र रत्नहार की बात पूछी, तब तब राजमहिषी ने यही कहा कि वह यत्नपूर्वक मणिमंजूषा में रखा हुआ है। अन्ततोगत्वा

महामाया मन्दिर के वार्षिक पूजनोत्सव का दिन आ उपस्थित हुआ । महामाया के मन्दिर को विविध मणिमुक्ताओं द्वारा आच्छादित कर दिया गया । शुभ्र बन्दनवार की कतार लगा दी गई । खूब साज सजावट हुई । पूजनोत्सव के दिन महापुजारी ने उस पवित्र रत्नहार को द्रविडराज से माँगा, क्योंकि कि महामाया की उपासना के पश्चात् उसकी भी उपासना होती थी । महापुजारी पौत्तालिक के आदेशानुसार द्रविडराज अन्तर्प्रकोष्ठ में आये और राजमहिषी से वह रत्नहार माँगा । राजमहिषी के श्वेत मुखमण्डल पर प्रखरतर कालिमा आ उपस्थित हुई । उन्होंने रत्नहार देने पर अपनी असमर्थता प्रकट की । द्रविडराज को किंचित आश्चर्य हुआ—“यह क्यों राजमहिषी !...रत्नहार देने में असमर्थता क्यों प्रगट कर रही हो ? क्या कारण है !...जानती हो कि वार्षिक पूजनोत्सव के समय उसकी भी उपासना परमावश्यक है—फिर भी ऐसा कहती हो !...लाओ ! देर न करो ।”

“मुझे ऐसा प्रतीत होता है नाथ !...” राजमहिषी आसन्न भय से कम्पित स्वर में बोली—“...कि यदि मैं वह कल्याणकारी रत्नहार अपने से विलग करूँगी, तो मेरी मृत्यु निश्चित है । साथ ही बहुत बड़े अनिष्ट की आशंका मेरे हृदय में जागरूक हो उठी है । जाने दीजिये प्राण !...प्राणप्रतिष्ठा के मंत्रों से भी रत्नहार की उपासना हो सकती है, वैसा ही करें....” राजमहिषी, कालचक्र के प्रभाव से अब भी द्रविडराज को सत्य बात न बता सकी ।

राजमहिषी के हठ से वाध्य होकर द्रविडराज महापुजारी के पास आये और राजमहिषी की समग्र बातें सुना दीं । महापुजारी पौत्तालिक के शुभ्र ललाट पर दुश्चिन्ता की स्पष्ट रेखायें खिंच उठीं—“भवितव्य बलवान है...” वे स्थिर वाणी में बोले—“तभी तो यह सब अघट घट रहा है ! अच्छा ! प्राणप्रतिष्ठा के मंत्रों द्वारा ही उस पवित्र रत्नहार की उपासना हो जायगी...मगर श्रीसम्राट् ! वह रत्नहार है तो सुरक्षित न !...”

“निस्सन्देह महापुजारी जी ! राजमहिषी असत्य कभी कह नहीं

सकतीं । एक पवित्र देवी पर अविश्वास करना, अपने हृदय के साथ अपवात करना होगा ।...दम्पति में अविश्वास का प्रवेश ही तो अनर्थ का सर्वोपरि कारण है ?...मैं साम्राज्ञी के बच्चों पर अविश्वास करने का स्वप्न में भी विचार नहीं कर सकता । आप इस विषय में निश्चिन्त रहें महापुजारी जी !”

पूजनोत्सव के दिन खूब खुशियाँ मनायी गयीं । महामाया का विधिवत् पूजन हुआ । पूजनोत्सव में पुष्पपुर के सभी गणमान्य नागरिक एवं द्रविड़राज, बाल युवराज आदि उपस्थित थे । तीन वर्ष के युवराज नारिकेल उस समय द्रविड़राज की गोद में बैठे हुए आश्चर्य चकित दृष्टि से सम्पूर्ण कार्य देख रहे थे । पूजनोत्सव समाप्त हो चुकने पर महापुजारी पौत्तालिक ने महामाया के चरणों पर से कुंकुम का पात्र उठाकर युवराज के शुभ ललाट पर थोड़ा सा लगा दिया । सब हर्ष से चिल्ला उठे—“युवराज नारिकेल की जय !”

तत्पश्चात् नगर के सम्पन्न नागरिक युवराज के लिये अनेकानेक प्रकार कां वस्तुयें, मणिमुक्ता लसित थालों में लाकर भेंट करने लगे । सभी थालें स्वर्ण निर्मित होती थीं । किसी में होती थीं बहुमूल्य रत्नराशि एवं किसी में होती थीं जगत की यावत संपदा को भी लजित कर देने वाली मणिमुक्तयें । सभी थाले श्वेत किन्तु बहुमूल्य वस्त्रों से आच्छादित रहती थीं । नागरिकगण अपने उपहार स्वतः लेकर युवराज के समक्ष उपस्थित होते थे । महापुजारी उनके कर्णों से थाल लेकर युवराज के निकट ले जाते और उसपर का वस्त्र हटाकर उसमें की अतुल धनराशि युवराज को दिखाते, तत्पश्चात् युवराज के कोमल कर्णों द्वारा छुलाकर वह थाल भूमि पर रख दिया जाता ।

अन्ततोगत्वा पुष्पपुर का सर्वश्रेष्ठ नागरिक किंशुक अपने उपहार की थाल लेकर युवराज के समक्ष उपस्थित हुआ । महापुजारी ने उसके हाथों से वह थाल लेकर युवराज को उसमें का अतुलित वैभव दिखलाने के लिये ऊपर का बहुमूल्य वस्त्र हटाया ।

भजन !.....एकाएक महापुजारी के काँपते हुए कर्णों से छूटकर वह थाल भयानक झुकाटे के साथ भूमि पर गिर पड़ी। सभी व्यक्ति आश्चर्य एवं उद्वेग से उठ खड़े हुए, क्योंकि थाल का गिरना महान् अपशकुन का द्योतक था। महापुजारी की शोचनीय दशा हो गई। वे खड़े हुए काँप रहे थे।—क्रोध एवं आवेगपूर्ण भंगिमा धारण किये हुए। अन्त में उन्होंने ने स्वतः झुककर थाल की वह विखरी हुई रत्नराशि पुनः थाल में एकत्रित की और वल्ल से ढँककर उसे लिये हुए एक प्रकोष्ठ में चले गये। साथ ही द्रविड़ राज को भी पीछे आने का संकेत करते गये। द्रविड़राज आश्चर्य-चकित मुद्रा बनाये हुए महापुजारी के प्रकोष्ठ में आये।

“देख रहे है श्रीसम्राट !.....” महापुजारी उद्दीप्त स्वरमें बोले “आप देख रहे हैं ? अनर्थ, प्रलय, अनिष्ट की सृष्टि हो गई। तभी तो तभी तो.....” महापुजारी क्रोध से हाथ मलने लगे। सम्राट ने झुककर उनका पैर पकड़ लिया—“जात क्या है महापुजारी जी..... क्या अनर्थ हुआ ! क्या अपराध हुआ !...”

“अपराध !...” महापुजारी गरज उठे—“पूछते हो क्या हुआ !...देखो ! नेत्र खोलकर देखो कि क्या हुआ, क्या होगा !...” महापुजारी ने आगे बढ़कर उस थाल का वल्ल हटा दिया। द्रविड़राज ने उस थाल में उपस्थित अगम रत्नराशि देखी—एकाएक वे भी भय एवं उद्वेग से चौंक उठे। उन्होंने कम्पित कर्णों से थाल में से एक रत्नहार उठा लिया—“उफ ! वही रत्नहार ! हमारे कुल का प्रदीप !...” उनके मुख से अस्त व्यस्त स्वर निकला। उन्होंने वह रत्नहार मस्तक से लगाकर उसका सम्मान किया, पुनः यत्नपूर्वक उसे थाल में रख दिया।

“देखो !...” महापुजारी ने अपने प्रज्वलित नेत्र द्रविड़राज के प्रतिभाहीन मुख पर स्थिर कर दिये—“कह दीजिये !...अब भी कह दीजिये कि रत्नहार सुरक्षित है...अब भी कह दीजिये कि इस रत्नहार का प्रखरतर अपमान नहीं हुआ है...कह दीजिये श्रीसम्राट !...”

द्रविडराज निस्तब्ध एवं निश्चेष्ट खड़े रहे। उनका शरीर काँप रहा था, परन्तु नेत्र हड़ थे। जीवन में आज प्रथम बार उन्हें राजमहिषी पर अविश्वास करने का अवसर मिला था। द्रविडराज के शासनकाल में यह पहली घटना थी कि एक धर्मपत्नी ने अपने पति से असत्य बात कही थी। न्यायप्रिय द्रविडराज खड़े दौत पीस रहे थे।

नगरसेठ किशुक बुलाया गया। वह काँपता हुआ आया। उसने केवल इतना कहा—“यह रत्नहार मेरी पुत्री ने उद्यान में पाया था। नहीं जानता था कि यह श्री सम्राट के ही राजप्रकोष्ठ का है और चुरा कर लाया गया है। आज मैंने सोचा था कि ऐसे बहुमूल्य रत्नहार को श्री सम्राट के कंठप्रदेश की शोभावृद्धि करनी चाहिये। यही विचारकर यह तुच्छ भेंट लाया था...मुझे क्षमा करें श्री सम्राट !....” तत्पश्चात् किशुक बाहर भेज दिया गया।

“श्री सम्राट !...”

“.....” द्रविडराज ने अपने स्थिर नेत्र महापुजारी के मुख पर निक्षेप किये।

“इस पवित्र रत्नहार का अपमान हुआ है, इसकी व्यवस्था करनी होगी, अन्यथा...जानते हैं !...आज ही प्रलय हो जायगा। इसकी शान्ति करना परमावश्यक है”—महापुजारी रुके, पुनः बोले—“साथ ही यदि आपका न्याय ‘न्याय’ है, तो राजमहिषी ने असत्य सम्भाषण कर गुस्तर अपराध किया है—उनके लिये दंड की व्यवस्था करनी होगी...करनी ही होगी श्री सम्राट...”

और द्रविडराज घड़ाम से भूमि पर गिर पड़े।

X

X

X

X

प्रातःकाल राजमहिषी जब जागृत हुईं, तो उनके समग्र शरीर में पीड़ा थी। उनका हृदय न जाने किस भावी संकट की आशंका से कम्पित हो रहा था। इस समय वे गर्भवती थीं। गर्भावस्था के सात मास व्यतीत हो चुके थे। यही कारण था कि हर समय उनके प्रकोष्ठ में

कई परिचारिकायें उपस्थित रहती थीं। परन्तु राजमहिषी को महान् आश्चर्य हुआ, दृष्टि देखकर कि इस समय एक भी परिचारिका उपस्थित नहीं है और प्रकोष्ठ का द्वार बाहर से बन्द किया हुआ है।

राजमहिषी उठकर द्वार के पास आई और उन्होंने उसे खोलने का व्यर्थ प्रयत्न किया। उन्हें आश्चर्य हुआ एवं क्रोध भी—किसकी धृष्टता हो सकती है यह ? उन्होंने पार्श्व की छोटी-सी खिड़की खोलकर बाहर की ओर झाँका। देखा, बहिर्द्वार पर सशस्त्र परिचारिकाओं का पहरा है। राजमहिषी के पुकारने पर एक परिचारिका खिड़की के पास आई और झुककर अभिवादन करने के पश्चात् बोली—“मुझे दुख है कि राजमहिषी को प्रकोष्ठ से बाहर आने की अनुमति नहीं है...”

“.....” साम्राज्ञी काँप उठी, क्रोध से।

“और न तो हमें राजमहिषी के समक्ष कोई वस्तु उपस्थित करने की ही आशा है...”

“किसकी आशा है यह ?...” गरज पड़ी राजमहिषी।

“स्वयं श्री सम्राट की !”—परिचारिका ने संयत स्वर में कहा और पुनः अभिवादन कर लौट गई। राजमहिषी दुःखातिरेक से व्यग्र होकर भ्रम से पलंग पर गिर पड़ी।

×

×

×

×

“कैसे कर सकूँगा यह सब महापुजारी जी ! जिसे हृदय दिया है उसे राजदण्ड कैसे दे सकूँगा”—अपने प्रकोष्ठ में बैठे हुए द्रविडराज शोक-मग्न हो रहे थे। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होकर भूमि का सिंचन कर रही थी—“उफ़ ! राजमहिषी ने यह सब क्या किया, कैसा अनर्थ उपस्थित कर दिया !”

“करना ही होगा श्री सम्राट !”—महापुजारी बोले—“यदि आप अपने न्याय को अटल रखना चाहते हैं, तो ऐसा करना ही होगा।”

“नहीं कर सकता महापुजारीजी ! आपके चरणोंपर मस्तक रखकर

कहता हूँ कि यह कार्य करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। मुझे क्षमा प्रदान कीजिये” —द्रविड़राज रो पड़े—“राजमहिषी का न्याय मैं आपके ऊपर छोड़ता हूँ। आप ही उसका न्याय कीजिये... आप ही विचारिये—जिस मुख से मैंने ‘प्रिये’ जैसा प्रिय शब्द उसके लिये प्रयोग किया है, उसी मुख से अग्नि-वर्षा सदृश्य राजाशा के कठोर वाक्य कैसे निकाल सकता हूँ”—

“आप भूल रहे हैं... भूल रहे हैं आप श्री सम्राट !... अपनी दुर्बलता के वशीभूत होकर आज आप अपनी सारी प्रजा को दिखा देना चाहते हैं कि आपका हृदय कितना कोमल एवं दुर्बल है। आज आप अपनी सारी प्रजा पर यह प्रकट कर देना चाहते हैं कि जिस न्याय का पालन आप प्रजा से कराते हैं, स्वयं आप उसका पालन करने में असमर्थ हैं। आज आप सब पर यह विदित कर देना चाहते हैं कि द्रविड़राज का न्याय ‘न्याय’ नहीं, वग्न एक घोखे की टट्टी है। आज आप सबको यह बतना देना चाहते हैं कि द्रविड़कुल को सारी न्याय शीलता पर आपके करों ने प्रखरतर कालिमा पोत दी। आज आप...” महापुजारी दो पग आगे बढ़ आये—“परन्तु क्या ऐसा करना उचित होगा श्री सम्राट !... प्राणों की बलि-प्रदान कर न्याय का पालन करनेवाले द्रविड़कुल की शीलता, क्या आज आप एक छोटी-सी द्विविधा में पड़कर त्याग देंगे !... क्या आप...”

“.....” द्रविड़राज स्थिर रहे। केवल एक बार उन्होंने अपनी अनामिका में पड़ी हुई मुक्ताजड़ित मुद्रिका पर दृष्टि निक्षेप की।

“भूल जाइये श्री सम्राट !... मोहमाया भूल जाइये ! आज आप यावत् जगत को दिखा दीजिये की द्रविड़राज का न्याय अटल है, अचल है.... हिमराज की भाँति !” —

“ऐसा ही होगा महापुजारीजी !”—सम्राट ने अपना हृदय संयत कर लिया। हृदय में उठते हुए भयानक उद्वेग को उनकी न्यायशीलता ने शमन कर डाला—“द्रविड़राज का न्याय अटल है, और अटल

रहेगा । न्याय के लिये हृदय का बलिदान, पत्नी का बलिदान, सबका बलिदान करने को प्रस्तुत हूँ मैं ।”

“श्रीसम्राट् की जय !”—महापुजारी बोले । द्रविडराज बड़बड़ाते रहे—“न्याय अटल है और अटल रहेगा...”

×

×

×

×

“अटल कैसे रहेगा श्री सम्राट् ?”—महामन्त्री खड़े थे, द्रविडराज के समक्ष करबद्ध—“श्री सम्राट् के न्याय के विरुद्ध घोषणा करने के लिये इस समय सारी प्रजा प्रस्तुत है । राजमहिषी को राजदण्ड नहीं दिया जाय, यही प्रजा की आकांक्षा है...”

“प्रजा की यह आकांक्षा प्रलयकारी है”—गरजे द्रविडराज—“और उससे द्रविडराज के शुभ्र न्याय पर कलंक कालिमा लगती है । प्रजा की यह आकांक्षा सफलीभूत नहीं हो सकती । राजमहिषी को न्याय-दंड भोगना ही पड़ेगा ।”

“अपने हृदय पर ध्यान दीजिये श्री सम्राट् ! टुकड़े-टुकड़े तो हो गया है आपका सन्तप्त हृदय । इन दो दिनों में ही तो आपकी मुख-श्री प्रतिभाहीन होकर हाहाकार करने लगी है—फिर भी आप राजमहिषी को दंड देंगे ? अपने हृदय का बलिदान करेंगे ?...”

“केवल हृदय का ही बलिदान नहीं, प्राण का भी बलिदान कर दूँगा—न्याय के लिये । महामन्त्री जी ! न्याय ही तो शासनकर्त्ता का भूषण है । जिस न्याय का प्रतिपालन शासनकर्त्ता अपनी असहाय प्रजा द्वारा कराता है, उसी न्याय पर आरुढ़ होकर स्वयं उसे भी अग्रसर होना उचित है । यही उसका परम कर्त्तव्य है । यह नहीं कि प्रजा के दंड के लिए तो नित्य नये नये न्याय, नये नये नियम बनें—और स्वयं शासनकर्त्ता के लिये सदैव पुष्पशैत्या सुसजित रहे । यह कहाँ का न्याय है ?”—द्रविडराज एक ही सँस में यह सब कह गये ।

“आप को राजमहिषी की गर्भावस्था पर ध्यान देना चाहिए श्रीसम्राट् !....”

“व्यर्थ है !...न्याय के प्रति-पालन में किसी भी अवस्था पर ध्यान देना अन्याय होगा....”

“श्री सम्राट मुझे प्राणों की भिक्षा दें...अन्याय तो यही है...”

“अन्याय !...” द्रविडराज का सारा शरीर क्रोध से प्रकम्पित हो उठा—“अन्याय है यह ! आज आप मेरे समक्ष न्याय और अन्याय का निर्णय करने आये हैं, आज आप मुझे न्याय की दीक्षा देने आये हैं ! जो अब तक न्याय का अनन्य प्रतिपोषक एवं उपासक रहा है, उसे आप न्याय और अन्याय का विवेचन सिखाने की स्पृहा रखते हैं महामन्त्रीजी !”—क्रोध से हुंकार उठे सम्राट—“कहाँ थे न्याय के पृष्ठ पोषक आप अब तक, जब कि मैं स्वर्ण-सिंहासन पर आरूढ़ होकर—न्यायदण्ड हाथों में लेकर अभागी प्रजा क अपराधों का न्याय किया करता था ! कहाँ थे आप, जब कि मैं एक साधारण अपराधी को भी न्याय की रक्षार्थ कठोरतम दण्ड देता था ! कहाँ थे आप, जब कि मेरे अटल न्याय की रक्षार्थ कितने ही अपराधी मृत्यु दण्ड पाते थे, कितने ही देश निर्वासन सहन करते थे....कहाँ थे आप !...जब मैं अपने न्यायासन पर बैठकर प्रजा का न्याय करता था, तब आप कहाँ थे ! आपका न्यायपूर्ण हृदय कहाँ था !”

“...” महामन्त्री निस्तब्ध खड़े थे, नीचा सिर किये हुए द्रविडराज के सन्मुख ।

“आज जब कि स्वयं राजमहिषी ने एक असत्य बात कह कर सर्वोपरि अपराध कर डाला, आज जब कि मैं स्वयं अपनी पत्नी को राजदण्ड देने जा रहा हूँ—तो आप आये हैं मुझे न्याय का पाठ पढ़ाने, आप आये हैं मुझे अन्याय और न्याय का अन्तर बताने । असत्य बोलना कितना बड़ा अपराध है, सो भी अपने ही पति से ।....भूल गये महामन्त्रीजी ! इसी अपराध में कितनों के ही प्राण उनके शरीर से विलग कर दिये गये हैं—फिर भी आप ऐसा कहते हैं !...जाइये महामन्त्री जी ! न्याय की व्यवस्था कीजिये । द्रविडराज ने जिस प्रकार आज तक

अपनी प्रजा का न्याय किया है, उसी प्रकार राजमहिषी का भी न्याय करेंगे। न्याय की सीमा में राजा, प्रजा, सभी एक हैं। न्याय अटल है और अटल रहना ही चाहिये। आज मैं अपने स्वार्थ के हेतु प्रजा के नेत्रों में निकृष्ट बनना उचित नहीं समझता। प्रजा भी देख ले कि स्वयं द्रविड़राज की प्राण प्रिय राजमहिषी त्रिधारा भी द्रविड़राज के अटल न्याय का सीमोल्लंघन नहीं कर सकती। आज सारी प्रजा नेत्र खोलकर देखे कि द्रविड़राज का जो न्याय-दंड समस्त प्रजा के लिए था, वही राजमहिषी के लिए भी है....”

“परन्तु श्री सम्राट !...”

“आवश्यकता नहीं !...द्रविड़राज को आगे एक शब्द भी सुनने की आवश्यकता नहीं। आप जायें !...”

महामन्त्री चले गये। द्रविड़राज चिन्तातिरेक से चेतना हीन होकर भूमि पर गिर पड़े।

×

×

×

आज वह विकराल दिन था, जब कि सारी प्रजा की आकांक्षा के विरुद्ध, राममहिषी त्रिधारा को असत्य कहने के महान् अपराध में दण्डाश सुनाई जानेवाली थी। राजसभा बैठी हुई थी। महापुजारी उच्च आसन पर आसीन थे। उसके ऊँचे नीचे द्रविड़राज का सिंहासन था। महामन्त्री खड़े हुए अभियोग की व्यवस्था में व्यस्त थे। नगर के सभी छोटे बड़े नागरिक यथोचित आसन पर आसीन थे। राजसभा में मृत्यु जैसी निस्तब्धता छाई हुई थी। सभी के नेत्र द्रविड़राज के शुष्क एवं प्रतिभाहीन मुखमण्डल पर केन्द्रित थे। द्रविड़राज शून्य दृष्टि से सामने का ओर देख रहे थे। कभी-कभी उनके नेत्रों के कोरों पर, बहुत प्रयत्न करने पर भी अभ्रुकण आ उपस्थित होते थे। दक्षिण की ओर झलझलाती हुई एक श्वेत यवनिका पड़ी थी, उसकी ओट में बन्दिनी राजमहिषी त्रिधारा अपनी एक परिचारिका के साथ उपस्थित थीं।

“श्री सम्राट राजमहिषी से यह पूछना चाहते हैं कि राजमहिषी

वह पवित्र रत्नहार कहाँ रखा है ?”—महामन्त्री की संयत वाणी राज-सभा में गूँज उठी ।

चारों ओर स्तब्धता थी, केवल यवनिका की ओट से राजमहिषी की परिचारिका ने उत्तर दिया—“राजमहिषी बताती हैं कि वह रत्नहार यज्ञपूर्वक मणिमंजूषा में बन्द है...”

पुनः शान्ति का साम्राज्य छा गया । सभी निश्चेष्ट रहे, केवल द्रविड़राज ने एकबार क्रोध से दाँत पीसा—राजमहिषी का पुनः असत्य सम्भाषण देखकर ।

“क्या राजमहिषी यह रत्नहार पहचान सकती हैं ?”—महामन्त्री ने वह पवित्र रत्नहार लेकर उस श्वेत यवनिका की ओर बढ़ा दिया । परिचारिका ने अपना हाथ यवनिका से थोड़ा बाहर निकालकर वह रत्नहार ले लिया ।

वह पवित्र रत्नहार देखते ही राजमहिषी पर वज्रपात हुआ । उनके नेत्रों के समक्ष घनीभूत अन्धकार छा गया । अपनी इस दुर्दशा का कारण आज उनकी समझ में आया । वे महान् पश्चात्ताप से दग्ध हो उठीं । महामन्त्री का स्वर पुनः सुनाई पड़ा—“श्री सम्राट पुनः पृच्छते हैं कि क्या राजमहिषी उस रत्नहार को पहिचान सकीं ?”

“हाँ !”—यवनिका की ओर से परिचारिका का स्वर आया—“राजमहिषी ने इस पवित्र रत्नहार को पहचान लिया है ।”

द्रविणराज की भंगिमा उद्दीप्त हो उठी । उन्होंने झुककर महामन्त्री के कान में न जाने क्या कहा । महामन्त्री उच्च स्वर में बोले—“श्री सम्राट दृढ़ स्वर में आज्ञा देते हैं कि साम्राज्ञी शीघ्र बतावें कि उन्होंने स्वयं श्री सम्राट से किस प्रकार असत्य सम्भाषण करने का दुस्साहस किया ?”

“राजमहिषी लज्जित हैं, इसके लिये...” परिचारिका का स्वर आया ।

“उन्हें राजदण्ड का भागी होना पड़ेगा”—

“राजमहिषी को सहर्ष स्वीकार है..”

महामन्त्री बैठ गये। द्रविडराज ललाट पर उँगली रखकर न जाने क्या विचार करने लगे। राजसभा में शान्ति थी। एक शब्द भी सुनाई नहीं पड़ता था। किसी के श्वांस प्रच्छ्वांस का शब्द भी नहीं सुनाई पड़ता था। महापुजारी पौत्तालिक स्थिर गति से आसनासीन थे। सभी सभासद कम्पित हृदय से उन वाक्यों की प्रतीक्षा कर रहे थे, जिनपर राजमहिषी का भविष्य अवलम्बित था।

एकाएक द्रविडराज अपना स्वर्णासन त्याग उठ खड़े हुए। सभासदों का हृदय अज्ञात आशंका से धड़क उठा, तीव्र वेग से। द्रविडराज ने मन ही मन महापुजारी को प्रणाम किया, पुनः संयत वाणी में बोले—“राजमहिषी को आजन्म निर्वासन की दंडाज्ञा सुनाई जाती है...”

“श्री सम्राट !...” एकाएक सभी सभासद तीव्र वेग से उठ खड़े हुए।

“बैठ जाओ...” द्रविडराज का कठोर गर्जन सुनाई पड़ा—
“राजाज्ञा की अवहेलना कर अपने परम कर्तव्य से व्युत् न हो...”

“राजमहिषी को राजदण्ड स्वीकार है” परिचारिका का स्वर कर्णगोचर हुआ। यवनिका की ओर से राजमहिषी के सिसकने का अस्फुट स्वर आया—“राजमहिषी श्री युवराज से मिलना चाहती हैं—”

“आवश्यकता नहीं !”—द्रविडराज बोले—“एक पवित्र आत्मा का एक कलुषित आत्मा से साक्षात् करने की कोई भी आवश्यकता नहीं। निर्वासन की तैयारी अभी होनी चाहिये।”

यवनिका की ओट में खड़ी हुई राजमहिषी त्रिधारा ने अपने नेत्र पोंछे, तत्पश्चात् वह पवित्र रत्नहार अपने कंठ-प्रदेश में डाल लिया। दो किरात आगे बढ़कर राजमहिषी के साथ हो लिये। आज तक जो ऐश्वर्य की सुखमयी गोद में प्रतिपालित होती आ रही थी, वह अपने अति की अटल न्याय की रक्षार्थ आजन्म निर्वासन सहन करने के लिये

सहर्ष प्रस्तुत हो गई। द्रविड़राज चेतनाहीन होकर सिंहासन पर गिर पड़े। महामन्त्री व्यग्र होकर सिंहासन की ओर दौड़े।



“आज उस घटना को व्यतीत हुए लगभग सोलह वर्ष हो चुके हैं चक्रवाल !”—द्रविड़राज अवरुद्ध स्वर में बोले—“मगर मैं अबतक राजमहिषी को भूल न सका। वह न्याय था, जिसका मैंने पालन किया था—अब शोकाग्नि में भस्म होकर उनके प्रति हृदय में जो अगाध प्रेम निहित है उसका प्रतिपालन मैं कर रहा हूँ चक्रवाल !...” चारणा चक्रवाल द्रविड़राज के समक्ष अपनी निस्तब्ध वीणा लिये हुए चुपचाप बैठा था—अभागे द्रविड़राज की दुर्दशा पर अश्रुकणों की वर्षा करता हुआ—“...उनके निर्वासन के पश्चात् कई बार मैंने उनकी खोज की, जंगल-पहाड़, नगर, गाँव, सभी स्थान खोज डाले—परन्तु उस देवी का पता न लगा, न लगा। वह गर्भवती थी—मेरे हृदय का एक अंश लिये हुए वह न जाने कहाँ विलुप्त हो गई चक्रवाल ! आज सोचता हूँ—मैंने न्याय की रक्षार्थ उसे आजन्म निर्वासन का दण्ड दिया था, तो क्या उसके प्रेम की रक्षार्थ मैं स्वयं यह जग-जंजाल त्यागकर उसके साथ भयानक वन में जाकर नहीं रह सकता था !...उस समय मैंने कितनी भारी भूल की थी, कि मुझे अबतक उस दाहक अग्नि में भस्मीभूत होना पड़ रहा है...”

“धैर्य जैसे उपयोगी शस्त्र को हाथ से छोड़ देना ही कायरता है—धैर्य ही शोसम्राट का भूषण होना चाहिये”—चक्रवाल ने संयत स्वर में कहा। उस युवक गायक के मुख पर असीम गम्भीरता एवं प्रगाढ़ दयनीयता नृत्य कर रही थी।

“कब तक घैर्य रखूँ चक्रवाल !...तुम्हारे व्यथापूर्ण गायन सुनकर हृदय दुखातिरेक से व्यग्र हो उठता है। न जाने क्यों तुम्हें सदैव व्यथापूर्ण गायन ही प्रिय लगते हैं !...”

“सुखद गायन से मैं सफलीभूत नहीं हो सकता श्री सम्राट् !...”

“सफलीभूत नहीं हो सकते !...क्यों नहीं सफलीभूत हो सकते वत्स !...जिसकी गायनकला मरणोन्मुख को जीवन प्रदान करनेवाली है, असमय में भी शुभ्र जल की वर्षा करानेवाली है, दिवस के प्रखर प्रकाश में भी दीपक प्रज्वलित करनेवाली है—वह कभी असफल हो सकता है चक्रवाल !...जब वीणा के तारों पर खेलते हुए गाने लगते हो तो...परन्तु देखना, युवराज से तुम यह सब कदापि न कहना, नहीं तो उसे अपने माता की करुण गाथा सुनकर महान् दुःख होगा। अभी तक मैंने उससे इस गाथा को पूर्णयता गुप्त रखा है...” एकाएक द्रविडराज की वाक्यधारा रुकी—“युवराज अभीतक आखेट से न लौटा...खैर ! जम्बुक तो साथ में है...जम्बुक !...आज तो वह एक भयानक बनमानुष में परिवर्तित हो गया है। यह तो कहो कि हम मानवों के सम्पर्क में रहने से वह बहुत कुछ सीख गया है, अन्यथा क्या वह कभी राजप्रकोष्ठ में रह सकता था !...देखो ! युवराज का साथ वह एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ता। एक मानव और एक वन्यपशु में इतनी घनिष्ठता कभी देखी थी तुमने !...मगर जम्बुक की बुद्धि बड़ी प्रखर है, तभी तो वह इतना मानवी-स्वभाव का हो गया है !...क्या है !”—द्वारपायक आकर खड़ा हो गया था, और द्रविडराज ने अंतिम बात उसी से पूछी थी।

“श्री युवराज आहत अवस्था में आखेट से पधारें हैं। जम्बुक उन्हें पीठपर उठाकर ला रहा है”—द्वारपायक ने विनम्रता से कहा।

द्रविडराज व्यग्र हो उठे—“आहत अवस्था में !...हुआ क्या ?” वे दौड़ पड़े युवराज के प्रकोष्ठ की ओर। चक्रवाल भी उनके पीछे पीछे आया।

आहत एवं चेतनाहीन युवराज एक पक्षंग पर लिटाये हुए थे और उनके पास ही खड़ा था एक भीमकाय वनमानुष । दौड़ते हुए सम्राट् आ पहुँचे—“क्या हुआ जम्बुक ?”—उन्होंने पूछा उस वनमानुष से । वनमानुष कुछ बोला नहीं, केवल अपने छोटे-छोटे अश्रुपूर्ण नेत्रों से द्रविडराज की ओर देखा और अपने हाथ की मोटी अँगुली उठाकर युवराज के मस्तक पर के घाव की ओर संकेत कर दिया ।

“उफ़ ! यह सब कैसे हो गया जम्बुक ! तू साथ छोड़कर किधर चला गया था ?”

“.....” इताश जम्बुक ने दोनों हाथों से अपना माथा पीट लिया । कितना समझदार था वह भयानक जीव ।

कई घड़ियों की अविराम सेवा से युवराज चैतन्य हुए । द्रविडराज के हर्ष का पारावार न रहा, अपनी अमूल्य निधि को सुरक्षित अवलोकन कर—“क्या हो गया था युवराज ?”

“भयानक वन में शूकर का पीछा किया था । एक वृक्ष की शाखा से मस्तक टकरा गया, इसीलिए यह भयानक घाव....उफ़ !...” मस्तक हिल जाने से युवराज कराह उठे—“...एक किरात कुमार मिल गया था, उससे अकारण ही युद्ध हो गया...”

“युद्ध हो गया ?...” द्रविडराज उतावली के साथ पूछ बैठे ।

“हाँ ! उसकी वीरता देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ पिताजी !”—

“विजय किसकी हुई ?...द्रविडकुल की वीरता में कलंक कालिमा तो न लगी ?...”

“मैं आहत था पिताजी !...”

“आहत थे तो क्या हुआ, तुम्हें अपना प्राण देकर भी अपने वीरत्व की लज्जा रखनी परमावश्यक थी...”

“मैंने भी यही सोचा था पिता जी !...और मैं तब तक युद्ध करता रहा, जब तक कि अशक्त होकर भूमि पर न गिर पड़ा ।...मैंने

उससे निश्चय कर लिया है, कि शीघ्र ही हम दोनों किसी उचित स्थान पर मिलकर अपने बलाबल का निर्णय कर लें। देखें! हमारी वह आकांक्षा कब सफल होती है ?” — युवराज शिथिल बाणी में बोले।

×

×

×

महामाया के सुविशाल राजमन्दिर के प्राङ्गण में कई प्रकोष्ठ निर्मित थे। जिनमें से एक में महापुजारी पौत्तालिक, दूसरे में युवक गायक चक्रवाल एवं तीसरे में अप्सरा-सी सुन्दरी किन्नरी निहारिका, ये ही तीन व्यक्ति निवास करते थे।

निहारिका महामाया मन्दिर की किन्नरी थी। यौवन राशि द्वारा प्रोद्भासित उसकी मधुयुक्त मुखराशि अतीव मनोहर दृष्टिगोचर होती थी। उसके सघन घन घटा जैसे श्यामल कुन्तल पाश की एकाध रेखा आकर जब कभी उसके आरक्त कपोलों पर नृत्य करने लगती, तो ऐसा लगता मानों समग्र संसार का मुग्धकारी सौन्दर्य उस कलामयी किन्नरी के कपोल-प्रदेश पर विराजमान हो गया है। उसके मृगशावक सदृश नयनों में उपस्थित थी तीव्र मादकता एवं हलाहल। काली काली पुतलियाँ ऐसी प्रतीत होती थीं, मानों जगत की सारी सुषमा का प्रवेश हो गया हो उनमें। जब उसके रक्तरंजित अधर हर्षातिरेक से उत्फुल्ल होकर चतुर्दिक् अपनी हृदयवेधी मुस्कान विखेर देते, तो ऐसा शात होता था, जैसे कलाधर अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित प्रकाशमान हो उठा हो। उसके सुषुप्त वत्सस्थलों पर कसी हुई रत्न-लसित कुंचुकि, कटि-प्रदेश में झल-झलाता हुआ लहंगा एवं पैरों में लसित नूपुर राशि — वास्तव में ऐसा लगता था, मानों देवराज की कोई अप्सरा पथभ्रान्त होकर इस शस्य-श्यामला भूमि पर चली आई हो।

गायक चक्रवाल का प्रकोष्ठ किन्नरी निहारिका के प्रकोष्ठ के पार्श्व में ही था। दोनों अपनी अपनी कला में उत्कृष्ट थे। चक्रवाल चारण था, उसकी गायन-कला अपूर्व थी — निहारिका किन्नरी थी उसकी नर्तन-कला मुग्धकारी थी। परन्तु दोनों कला के भिन्न २ अंशों में पारंगत

होते हुए भी एकाकार थे। उनके व्यवहार, उनकी शीलता में कोई अन्तर न था। अवकाश मिलने पर दोनों एकाकी बैठकर वार्तालाप करते।

पूजोत्सव से लौटकर कभी कभी निहारिका जब अपने प्रकोष्ठ में आकर, प्रकोष्ठ को भीतर से बन्दकर, वस्त्र परिवर्तन करने लगती—तभी चक्रवाल आ पहुँचता। द्वार पर खट्-खट की ध्वनि सुनकर निहारिका अनुमान कर लेती कि यह चक्रवाल है। फिर भी वह पूछती—“कौन है ?...”

“मैं हूँ !—” बाहर खड़ा हुआ चक्रवाल कहता।

“कौन हो तुम ? जाओ इस समय !”—किन्नरी यों ही कह देती।

“मैं तो नहीं जाता—देखूँ कब तक द्वार नहीं खुलता”—चक्रवाल द्वार पर जमकर बैठ जाता, मगर कान भीतर की ओर लगे रहते। भीतर से वाणी विनिन्दित स्वर में एक मधुर रागिनी निकल पड़ती—“तुम आज जलाने क्यों आये ?”

चक्रवाल चुप रहता। भीतर से पुनः गायन-ध्वनि यावत् प्रकृति को विकल करती हुई प्रकम्पित हो उठती—“तुम आज जलाने क्यों आये ?”

चक्रवाल का गायक हृदय स्थिर न रह सकता। वह भ्रूम भ्रूमकर गाने लगता—

मधुर स्मृति का आलिंगन—वेदना मधुर, पीड़ित चुम्बन !

कण कण में तड़पन और जलन...

भीतर से स्वर रागिनी निकलती—

मेरे डर की सुखी बगिचा में, आग लगाने क्यों आये ?

तुम आज जलाने क्यों आये ?

गायन समाप्त हो जाता और प्रकोष्ठ के द्वार भी खुल जाते। चक्रवाल उठकर मन्थर गति से प्रकोष्ठ के भीतर प्रवेश करता। उसकी गम्भी-

रतापूर्ण मुखकृति पर तनिक भी हास्य की रेखा प्रस्फुटित न होती । वह शून्य दृष्टि से किन्नरी की ओर निहार कर बुकारता—“किन्नरी !..”

“.....” निहारिका अप्सक नयनों द्वारा चक्रवाल की सिद्धहस्त अँगुलियों का निरीक्षण करती रहती । वे अँगुलियाँ जो वीणा के उज्ज्वल तारों पर अविराम गति से दौड़ती हुई प्रकृति के कोलाहल पूर्ण वातावरण को शान्त कर देने की शक्ति रखती थीं ।

“एक बात पूछूँ ?” चक्रवाल प्रश्न करता ।

“पूछो न !”—कहते कहते किन्नरी की दन्त-पंक्तियाँ सघन घन में विद्युत घटा-सी आलोकित हो उठतीं ।

“आज उपासना समाप्त हो जाने पर, जब तुम श्री युवराज के शुभ्र ललाट पर कुंकुम लगाने के लिये उद्यत हुई थी, तो मैंने ध्यानपूर्वक देखा था कि न जाने क्यों तुम्हारे अवयव प्रकम्पित हो उठे थे । तुमने अपने नेत्रों की सारी सुषुमा श्री युवराज के मुखमण्डल पर केन्द्रित कर दी थी । तुम्हारे उज्ज्वल मुख पर लज्जाजनित सुन्दर भंगिमा ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था । जब तुमने थोड़ा-सा कुंकुम उठाकर श्री युवराज के मस्तक पर लगाया था, उस समय तुम्हारे कंपित करों ने अपना कार्य सुन्दरतापूर्वक पूर्ण नहीं किया था—फलतः कुंकुम का थोड़ा सा भाग युवराज की नासिका पर भी लग गया था । श्री युवराज के अचरद्वय, मधुर मुस्कान की प्रभा द्वारा परिपूर्ण हो उठे थे—तुम्हारी असावधानी देखकर । जीवन में आज प्रथम बार श्री युवराज ने तुम्हारी ओर देखकर मुस्कराया था...यों तो तुम नित्यप्रति ही महामाया के मन्दिर में श्री युवराज एवं श्री सम्राट् के समक्ष नृत्य करती हो—उपासना समाप्त हो जाने पर नित्य प्रति ही तुम अपने करों द्वारा श्री युवराज के देदीप्यमान मस्तक पर कुंकुम की रेखा खींचती हो, परन्तु आज तक श्री युवराज ने तुमसे तनिक भी सम्भाषण न किया....”

“कैसे सम्भाषण कर सकते हैं श्री युवराज ?”—किन्नरी निहारिका ने हृदय को उद्वेलित कर देने वाली एक दीर्घ निश्वास छोड़ी—“वे हैं

एक परमोज्ज्वल कुल के अनमोल रत्न और मैं हूँ एक अचम किन्नरी ।
मेरे और उनके मध्य महान अन्तर है चक्रवाल !....कहाँ निर्मल धवल
चन्द्र और कहाँ गगन मण्डल की एक लुद्ध तारिका !”

“एक बात है !...लोकलज्जा एवं वाङ्माडम्बर के वशीभूत होकर
वे चाहे तुमसे सम्भाषण न कर सकते हों मगर उनके हृदय में तुम्हारे
प्रति एवं तुम्हारी कला के प्रति समुचित आदर एवं प्रेम है । मुझसे
बहुत बार वे तुम्हारी नर्तनकला की प्रशंसा कर चुके हैं । आज भी तुम्हारे
विषय में मुझसे बहुत सी बातें कर रहे थे....”

“सच !...”

“और नहीं तो क्या ?....”

“आजकल तो श्री युवराज मन्दिर में नहीं पधार रहे हैं”—

“कई दिन पूर्व वे आखेट को गये थे, वही आहत हो गये थे ।
आशा है कल वे राजमन्दिर में पधारें । सच पूछो तो श्री युवराज के
बिना पूजनोत्सव सूना-सा लगता है । मुझसे गाया नहीं जाता और
तुम्हारी तो सम्पूर्ण कला ही फीकी हो जाती है, श्री युवराज को अनु-
पस्थित देखकर । बड़े सद्वृत्त हैं श्री युवराज !...”

बाहर से चरणपादुका का खट्ट खट्ट शब्द हुआ और दोनों की
विचारधारा रुक गई—“महापुत्राजी आ रहे हैं...” चक्रवाल ने कहा
और तुरन्त ही उसकी मधुर रागिनी ने प्रकोष्ठ की दीवारों को गुञ्जरित
कर दिया—“हरि हरि बोल, हरि हरि बोल—प्राण पपीहे हरि हरि
बोल ।”—

साक्षित पक्षी की भाँति किन्नरी निहारिका ने अपनी मंगिमा ठीक कर
ली । उसके अवयव कलापूर्ण रीति से चक्रवाल के गायन का भाव
प्रदर्शित करने लगे । चक्रवाल की कला के साथ किन्नरी की कला का
सम्मिश्रण होने लगा । महापुत्राजी के समक्ष यह प्रदर्शित करने के लिये
कि वे दोनों वहाँ काम की बातें कर रहे थे, उनका वह नाट्य अपूर्व

था। चक्रवाल की मधुर स्वर लहरी अलाप रही थी—“मेरे जीवन की धारा में, जाग उठे मंजुल कलोल। प्राण पीये हरि हरि बोल।”

महापुजारी आये। चक्रवाल का गायन एवं किन्नरी का नर्तन रुक गया। दोनों ने आगे बढ़कर महापुजारी के चरण छूए। महापुजारी ने उनकी मंगलकामना की—“क्या हो रहा था चक्रवाल !” उन्होंने पूछा।

“कुछ नहीं ! आज एक नये गायन पर किन्नरी के कला की परीक्षा ले रहा था...”

“अच्छा !...परन्तु आज तुम श्रीयुवराज के समक्ष उपस्थित न हुए। इस समय वे तुम्हारे ही विषय में चर्चा कर रहे थे। अच्छा हो कि तुम अपनी वीणा लेकर उनके प्रकोष्ठ में चले जाओ और अपने गायन द्वारा कुछ समय तक उनका मनोरंजन करो...”

“ओ आज्ञा !...”

“निहारिका ! अब तुम विश्राम करो !” महापुजारी ने किन्नरी को आज्ञा दी—“श्री युवराज अस्वस्थ हो गये हैं ! कल प्रातःकाल वे राजमन्दिर में पधारेंगे। तुम उनका स्वागत करने के लिये अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित प्रस्तुत रहना !”—महापुजारी चक्रवाल को साथ लेकर किन्नरी के प्रकोष्ठ से बाहर चले गये। किन्नरी ने विश्राम की आँगड़ाई ली। स्वर्णदर्पण के समक्ष आ खड़ी हुई। वह दर्पण स्वर्ण के एक दीर्घाकार पट पर, न जाने किस वस्तु का आवरण चढ़ाकर, निर्मित किया गया था, कि वह आधुनिक दर्पणों से भी अधिक स्वच्छ एवं जाज्वल्यमान था। किन्नरी ने उस प्रौज्वल दर्पण में अपने मादक सौन्दर्य का अवलोकन किया। कितना आकर्षक एवं कितना प्रभापूर्ण था उस युवती किन्नरी का वेदीप्यमान सौन्दर्य !

×

×

×

×

रात्रि के अन्तिम प्रहर में नीलाकाश पर दो चार तारिकायें नृत्य कर रही थीं ! रात्रि का प्रगाढ़ अन्वकार हरा थका-सा प्रतीत होता था और

उसके कालिमापूर्ण पट पर प्रकाश की प्रोज्वलता क्रमशः अपना अधिकार जमाती जा रही थी। पूर्वाकाश शीघ्र ही पदार्पण करने वाली ऊषा के शुभागमन का स्वागत करने को पूर्णतया प्रस्तुत था। सुखद नीड़ों में से पक्षियों का गुञ्जरित कलरव क्रमशः बढ़ रहा था।

पुष्पपुर राजप्रासाद के पार्श्व में ही स्थित था महामाया का सुविशाल राजमन्दिर, जहाँ अपने प्रकोष्ठ में एक छोटी-सी खिड़की के पास बैठा हुआ गायक चक्रवाल अकाशमंडल की लुद्र तारिकाओं का कल्लोल देख रहा था, साथ ही उसकी मधुर स्वर रागिनी यावत् प्रकृति की निस्तब्धता का वेधन करती हुई अलाप रही थी—

रात्रि शेष हो चली देख ले, अलसा रहे गगन के तारे।

दिन से चली अंकमर मिलने, अब विमावरी हाथ पसारे।

यह उसका नित्य का कार्य था। इसमें तनिक भी अशुक्लता अथवा तनिक भी अव्यवस्थिता नहीं आ पाती थी। नित्य प्रातः घड़ी रात्रि रहे, उसकी निद्रा टूट जाती थी। निद्रा टूटते ही सर्वप्रथम वह महामाया का स्मरण करता, तत्पश्चात् महापुजारी को मन ही मन प्रणाम कर प्रकोष्ठ की छोटी-सी खिड़की पर जा बैठता। प्रकृति की निस्तब्धता एवं प्रातःकाल के सुखद समीर का मृदु सन्देश पाकर उसके हृदय की गायन कला प्रस्फुटित होने लगती। वह अपने कला में पूर्णतया तन्मय हो जाता। उसका गायन सुनकर महापुजारी जी की निद्रा खुलती, किन्नरी जाग पड़ती, एवं मन्दिर के पार्श्व में स्थित राजप्रकोष्ठ के सभी व्यक्ति, द्रविड़राज, युवराज आदि उठ बैठते। चक्रवाल का गायन उनके लिये प्रातः जागरण का मधुर सन्देश था। सब जग पड़ते, परन्तु चक्रवाल का गायन न रुकता—तबतक, जबतक कि किन्नरी उसके प्रकोष्ठ में आकर न कहती—“रहने दो चक्रवाल ! सब जग पड़े हैं। अब तुम भी स्नानादि से निवृत्त होकर शीघ्र ही मन्दिर में आने की चेष्टा करो।...”

नित्य की भाँति आज भी किन्नरी उसके प्रकोष्ठ में आई—“सब

तो जग पड़े और तुम गाते ही रहोगे क्या ?...” उसने कहा । चक्रवाल की विचारधारा भङ्ग हुई, उसका गायन रुक गया ।

“आज श्री युवराज पधारेंगे । शीघ्र ही आओ”—कहकर वह तीव्र गति से अपने प्रकोष्ठ की ओर चली गई ।

महामाया के पूजन का उत्सव दर्शनीय होता था । अगणित सुगन्धित द्रव्य अग्निकुण्ड में जलते थे जिससे वायु हृदयोल्लासक सुरभि लेकर इधर-उधर विचरण किया करती थी । महामाया की रत्नजड़ित प्रतिमा हृदय में अपूर्व भक्ति का श्रोत प्रवाहित कर देती थी । महामाया की प्रतिमा के समक्ष एक स्वर्ण निर्मित थाल में कुंकुम एवं आरती के हेतु कर्पूर रखा रहता था । द्रविडराज, एवं महामन्त्री का पूजनोत्सव के समय मन्दिर में उपस्थित रहना अनिवार्य था ।

आज बहुत दिनों के पश्चात् युवराज ने राजमन्दिर में पदार्पण किया । द्रविडराज, युवराज एवं महामन्त्री—सब यथायोग्य स्वर्णसनों पर आसीन थे । आज किन्नरी निहारिका की वेषभूषा अपूर्व थी । इस समय वह चक्रवाल के पार्श्व में, मस्तक नीचा किये हुए, एवं तर्जनी ठुड़ी पर रखकर, कुछ कुछ सोचने का नाट्य किये हुए बैठी थी—मगर उस बैठने में भी उस कलापूर्ण युवती की अनोखी कला प्रगट हो रही थी । उसके प्रत्येक अङ्ग सञ्चालन में अपूर्व कला का सम्मिश्रण था । अपूर्व थी वह कलामयी सुन्दरी ।

पूजन प्रारम्भ हुआ । महापुजारी ने महामाया का विधिवत् पूजन किया । प्रबल घण्टारव से सुविशाल मन्दिर गुञ्जायमान हो उठा । शंखध्वनि कोने कोने में गुञ्जित होने लगी । द्रविडराज एवं युवराज आदि ने महामाया एवं महापुजारी के चरणों में मन ही मन प्रणाम किया ।

चक्रवाल सजग हुआ । अब उसका कार्य प्रारम्भ होनेवाला था । उसने अपनी समग्र मधुरता का संवरण किया—तुरन्त ही महामाया का गुणगान उसकी स्वर लहरी से निकल पड़ा—“वरदे, शत्रुविनाशिनी

वर दे !”—साथ ही उसकी अभ्यस्त अँगुलियाँ वीणा के तारों पर जा पड़ी। तार मधुर स्वर से भङ्कृत हो उठे। यह मधुर अवाहन था, उस कलामयी किन्नरी के हेतु। वह उठी। मन्थर गति से, पग-पग पर अपनी कलापूर्ण प्रतिभा विखेरती हुई वह कुंकुम की थाली के पास आ खड़ी हुई। उसने कर्पूर-मात्र उठाकर उसे बाला, पुनः महामाया की आरती उतारने लगी। मन्दिर के घण्टे पुनः तीव्र वेग से गुञ्जायमान हो उठे। आरती होती रही, चक्रवाल गाता रहा—

काट अन्ध डर के बन्धन स्तर, बहा जननि ज्योतिर्मय निर्धर

कलुषभेद, तमहर, प्रकाश भर, जगमग जग कर दे। वरदे...

आरती समाप्त हुई। उस मंगलमयी आरती का स्वागत करने के हेतु, किन्नरी सब के समक्ष आरती का थाल ले जाने लगी। सभी भक्ति एवं भक्तापूर्वक, दोनों हाथ से उस शुभ्र आरती की परिक्रमा कर, मस्तक से लगाते थे। द्रविड़राज ने आरती का स्वागत किया। उनके पार्श्व में ही बैठे थे युवराज। किन्नरी आरती की थाली लेकर युवराज के समक्ष आई। वह न जाने क्यों सहम-सी गई, लज्जित-सी हो हो उठी। उसका हाथ एक क्षण के लिये प्रकम्पित हो उठा। युवराज ने भी आरती का स्वागत किया !—तत्पश्चात् किन्नरी के प्रकम्पित करों ने थाली में से थोड़ा-सा कुंकुम उठाकर युवराज के शुभ्र ललाट पर पोत दिया।

आरती की क्रिया समाप्त हो चुकने पर, चक्रवाल ने पुनः अपनी वीणा उठाई। उसकी तर्जनी ने वीणा के प्रकम्पित तारों का स्पर्श किया। प्रकृति को गुञ्जरित कर देनेवाली सुमधुर भङ्कार निकल पड़ी उस मोहिनी वीणा के साथ ही किन्नरी के नूपुर बोल उठे—**कूम छनन !** उस समय बालसूर्य की एक पतली किरण, मन्दिर के प्रांगण में से आकर, युवराज के सुन्दर मुखपर खेल रही थी। चक्रवाल ने गाया—
“अलस भाव त्याग सजनि, प्रथम किरण आई।”

किन्नरी ने अपने कलापूर्ण कटिप्रदेश को मरोड़ कर एवं अपने सुकोमल शरीर को कम्पित करके ‘अलस भाव त्याग सजनि’ का भाव

बताया, तत्पश्चात् युवराज के मुखपर नृत्य करती हुई उस स्वर्णिम किरण की ओर संकेत करके 'प्रथम किरण आई' की व्यंजना की। पुनः उसके नूपुर बज उठे—छूम ! छुननन !! चक्रवाल की तर्जनी वीणा के तारों पर नृत्य करती रही एवं उसी के ताल के साथ-साथ किन्नरी की नर्तनकला भी प्रवाहित होती रही। चक्रवाल गाता रहा—

सुषमा की निधि अपार, क्यों न उठे पलकभार,
तन्द्रावश यों निहार सहसा मुस्काई ॥ अलस भाव...

किन्नरी ने यावत् जगत की ओर हाथ उठाकर 'सुषमा की निधि अपार' का संकेत किया, पुनः भूमि पर बैठकर दोनों नेत्र बन्द कर 'न उठे पलक भार' प्रदर्शित किया, तत्पश्चात् अपने दोनों मादक नयन अर्द्धोन्मिलन कर 'तन्द्रावश यों निहार' का भाव बताया एवं अघरों पर एक मंदिर मुस्कान लाकर 'सहसा मुस्काई' की व्यंजना की।

सब आवाक्ये—उस कलामयी सुन्दरी की अप्रतिभ कला का अवलोकन कर। मरशोन्मुख को जीवित कर देने वाली थी उस किन्नरी की नर्तन कला। युवराज के हृदय प्रदेश में, उस किन्नरी का अपूर्व प्रदर्शन देखकर, एक अनोखा दृश्य उद्भूत हो गया था। उनका हृदय, कला का पुजारी था और किन्नरी निहारिका थी कला की साक्षात् प्रतिमा।

एक मधुर झंकार के साथ चक्रवाल ने वीणा भूमि पर रख दी। पूजनोत्सव समाप्त हुआ। सब चले गये। किन्नरी अपने प्रकोष्ठ में आई। युवराज और चक्रवाल धीरे धीरे सम्भाषण करते हुए अपने प्रकोष्ठ की ओर जाने लगे।

“चक्रवाल !....”

“श्री युवराज की आज्ञा ?”—

“आज तो किन्नरी की कला अपूर्व थी।”—

“उसकी कला अद्वितीय है श्री युवराज !...और यह उसके लिये

परम गौरव की बात है कि श्री युवराज के हृदय में उसकी कला के प्रति इतना आकर्षण है...”

“तुम समझते हो आज से !...परन्तु मैं बहुत दिनों पूर्व से ही उसकी कला का आदर करता आ रहा हूँ। भला स्वर्गीय कला का कौन आदर न करेगा !”

“श्री युवराज की बात असत्य नहीं है...परन्तु श्री युवराज मेरी धृष्टता क्षमा करेंगे—किन्नरी के हृदय में आपके प्रति अपूर्व श्रद्धा बहुत पूर्व से ही विराजमान है। यह उसका परम दुर्भाग्य है कि श्री युवराज ने आज तक उससे तनिक भी संभाषण करने का कष्ट न उठाया। वह इसके लिए अत्यन्त लालायित रहती है। यदि आप इतनी कृपा करें श्री युवराज तो...”

“यह मैं भी चाहता हूँ। आज मुझे अवकाश है। चलो ! उसके प्रकोष्ठ में चलकर कुछ देर तक उससे भाषण कर लेने से चित्त को बहुत शान्ति मिलेगी।”

चक्रवाल प्रसन्नता से खिल उठा। आज जम्बूद्वीप के भावी अधीश्वर एक किन्नरी से सम्भाषण करेंगे—यह कितने आश्चर्य की बात थी, परन्तु किन्नरी एवं चक्रवाल के लिए कितने प्रसन्नता की। युवराज और चक्रवाल किन्नरी के प्रकोष्ठ के पास आये। प्रकोष्ठ के द्वार बन्द थे, कदाचित् भीतर किन्नरी वल्ल परिवर्तन कर रही थी। चक्रवाल ने द्वार खटखटाया, साथ ही अन्तर्प्रदेश से किन्नरी का स्वर कर्णगोचर हुआ—“कौन है ?”—नित्य की भाँति यद्यपि निहारिका ने अनुमान लगा लिया था कि चक्रवाल होगा, मगर क्या उसे स्वप्न में भी अनुमान हो सकता था कि युवराज नारिकेल उसके प्रकोष्ठ में पदार्पण करेंगे।

“मैं हूँ !..” चक्रवाल ने नित्य की भाँति कह दिया।

“कौन हो तुम !...बाओ इस समय !”—

“बहुत आवश्यकीय कार्य है। शीघ्र द्वार खोलो”—चक्रवाल ने

कहा । किन्नरी वस्त्र परिवर्तन कर चुकी । उसने आगे बढ़कर धीरे से द्वार खोल दिया । एकाएक उसका सारा शरीर तीव्र वेग से प्रकम्पित हो उठा—युवराज की चक्रवाल के साथ वहाँ उपस्थित देखकर—उफ़ ! युवराज के समक्ष उसने ऐसी धृष्टतापूर्ण बात कह दी !

किन्नरी ने तुरन्त ही अपनी अव्यवस्थित मंगिमा ठीक कर ली । उसने झुककर युवराज का सम्मान किया । चक्रवाल बोला—“आज श्री युवराज तुम्हारे प्रकोष्ठ में पधारें हैं...”

“अहो भाग्य !” निहारिका ने मधुर मुस्कान के साथ वीणाविनिन्दित स्वर में कहा । युवराज एवं चक्रवाल प्रकोष्ठ के भीतर आये । चक्रवाल ने युवराज के लिये एक स्वर्णासन रख दिया । युवराज बैठ गये । चक्रवाल एवं किन्नरी उनके समक्ष भूमि पर बैठे । कुछ देर तक सन्नाटा रहा ।

“तुम्हारी कला अपूर्व है किन्नरी !”—युवराज ने कहा ।

“...”किन्नरी ने कुछ कहना चाहा, परन्तु भावावेश में उसके मुख से शब्द ही न निकले । केवल उसके नेत्र एक क्षण के लिये युवराज के मुख पर जा पड़े ।

“तुम जब नृत्य करती हो, तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है—मानो जगत् की अगाध रूपराशि तुम्हारे अवयव द्वारा संचारित हो रही है, मानों संसार की सारी अनुपम सुषमा तुम्हारे नर्तन में प्रवेश कर अपनी प्रतिभा प्रदर्शित कर रही है, मानों तुम्हारे अपूर्व अंग संचालन के साथ ही साथ कितने ही तृपित हृदय संचालित हो रहे हैं...” युवराज की इस वाणी ने किन्नरी निहारिका को कृतकृत्य कर दिया, निहाल कर दिया ।

“यह श्री युवराज की असीम अनुकम्पा है”—किन्नरी ने केवल इतना कहा ।

“यदि श्री युवराज मुझे कुछ देर के लिए बाहर जाने की आज्ञा दे सकें, तो मैं आभारी हूँगा”—चक्रवाल ने कहा ।

“क्यों !...” पूछा युवराज ने ।

“एक अत्यावश्यक कार्य करना मैं भूल गया हूँ । मैं अभी आ जाऊँगा ।”

“बाओ ! परन्तु शीघ्र आना ।”—

चक्रवाल युवराज को सम्मान प्रदर्शन कर बाहर चला गया । प्रकोष्ठ में केवल युवराज और किन्नरी रह गये । कुछ देर तक घोर नीरवता उस सुसज्जित प्रकोष्ठ में विराजमान रही ।

“किन्नरी !” पुकारा युवराज ने ।

“.....” उसने अपलक नेत्रों से युवराज के मुख की ओर देखा ।

“मेरे आने से तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?”—

“कष्ट !...” मधुर हास्य कर उठी सौन्दर्य की ‘वह’ अपूर्व प्रतिमा—“भला देव के आने से देवदासी को कभी कष्ट हो सकता है ? मेरे भाग्य बाग्रत हो उठे, जो आप यहाँ पधारे...” उसी समय चक्रवाल के प्रकोष्ठ से गायन-ध्वनि सुन पड़ी—“आज भाग जागे हमारे । अनाथ घर नाथ पधारे ।”

“क्या श्रीयुवराज मेरी एक धृष्टता क्षमा कर सकेंगे ?”—

“कहो ?”—

“ओ युवराज को मेरे नर्तन में कौन-सी ऐसी उत्कृष्टता दृष्टिगोचर हुई ?”—

“उत्कृष्टता नहीं, आकर्षण कहो । जगत का कौन-सा ऐसा आकर्षण है, जो तुम्हारी कला में प्रस्तुत न हो...”

कुछ काल तक पुनः निस्तम्बता रही—“एक बात मैं पूछूँ ?”— युवराज ने कहा ।

“पूछिये न !”—सहज मुस्कराहट के साथ वह बोली ।

“उस दिन मेरे मस्तक पर कुंकुम लगाते समय, मेरी नासिका पर...”

“मैं उसके लिए क्षमा चाहती हूँ श्री युवराज !” निहारिका लज्जा से गड़-सी गई ।

“कल राबोद्यान में, रात्रि के प्रथम प्रहर में, मुझसे भेंट कर सकती हो !” —

“भला देव की आज्ञा देवदासी कभी अस्वीकार कर सकती है !” —

“मैं जा रहा हूँ !” — युवराज ने भावावेश में किन्नरी के प्रकम्पित हाथ पकड़ लिये ।

“मुझे अधिक बिलम्ब हो गया श्री युवराज ! क्षमा करें” — चक्र-
वाल आ पहुँचा — “वह देखिये ! जम्बुक चला आ रहा है । कदाचित् कोई आवश्यक कार्य है” — युवराज ने सामने देखा तो वास्तव में बन-
राज जम्बुक चला आ रहा था ।

युवराज बाहर आये । किन्नरी ने उन्हें सम्मानपूर्वक अभिवादन किया :



पुष्पपुर नगरी से कई योजन दूर विकट बनस्थली के क्रोड़ में, अव-
स्थित था एक विशाल ग्राम । ग्राम के चारो ओर भयानकता का नृत्य
होता रहता था । दीनता का वहाँ प्रकाश्य साम्राज्य था । उस ग्राम में
अपना जीवन यापन करते थे दीनहीन एवं दुःखित किरातगण । छोटे छोटे
झोंपड़ों में रहते हुए वे ग्रीष्म की कड़कड़ाती धूप एवं जाड़े की अक-
स्थिर कर देनेवाली ठंडक का सामना करते थे । उनके पास जो कुछ भी
था, उसी में वे सन्तुष्ट रहते थे । उनके बालक उल्लसित होकर इधर
उधर विचरण किया करते थे । सन्ध्या का आगमन होते ही सब किरात-
गण एकत्रित होकर नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद में तल्लीन हो जाते

ये। सब में ऐक्य भाव था। सभी अपने नायक की आशा पर अपने प्राणों को उत्सर्ग करने के लिये सदैव, अहिर्निशि, प्रस्तुत रहते थे। नायक के आशा की अवहेलना करने का कोई भी दुस्साहस नहीं कर सकता था।

किरातकुमार पर्णिक भी इसी ग्राम के एक दुकूल पर, अपनी माता के साथ, एक छोटे से भोपड़े में रहता था। पर्णिक अपने उस आमोद-मय छोटे से संसार में पूर्णतया सुखी था, परन्तु उसकी माता के मुख पर कभी किसी ने हास्य की रेखा न देखी थी। न जाने कौन ऐसी गुह्य वेदना उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग को शिथिल बनाये रहती थी। वह अधिकतर अपनी भोपड़ी के द्वारदेश पर नेत्रों में अभ्रुकण छिपाये बैठी रहा करती थी। अन्य किरात स्त्रियों के पास बैठकर मूर्खता की कुछ बातें कर लेना उसे स्वीकार न था। उसे सदैव एकान्त ही प्रिय था।

पर्णिक आज प्रातःकाल से ही किरात बालकों के साथ खेलने में तल्लीन था। पर्णिक की अवस्था लगभग २० वर्ष की थी। उसके साथी भी इसके समवयस्क ही थे। सब लोग पर्णिक के भोपड़ी के पास ही खेल रहे थे। पर्णिक की माता भी द्वार पर बैठी हुई उन युवकों का कल्लोल देख रही थी !

“आओ ! आज हमलोग ‘सम्राट का न्याय’ नामक स्वांग रचें” पर्णिक ने कहा।

“कैसा है यह स्वांग !”—एक ने पूछा। पर्णिक उन्हें धीमे स्वर में स्वांग की सब बातें बताने लगा। अन्त में स्वतः एक ऊँचे शिलाखण्ड पर आ बैठा—“तो मैं सम्राट बन गया”—उसने कहा। उसका नाटक प्रारम्भ हो गया था—“साम्राज्ञी को उपस्थित करो !”—वह गरजकर बोला—“सम्राट का न्याय ‘न्याय’ है—अटल !—साम्राज्ञी ने स्वयं सम्राट से असत्य भाषण कर महान् अपराध किया है, उसका दंड उसे भोगना ही पड़ेगा। सम्राट का न्याय साम्राज्ञी एवं प्रजा के लिये, सब के लिये, एक सा है...”

“क्षमा ! क्षमा श्री सम्राट् !...” मन्त्री का नाट्य करने वाले लड़के ने कहा—“साम्राज्ञी गर्भवती हैं...”

“चुप रहो”—कल्पित सम्राट् गरजे—“मेरी क्रोधाग्नि में भस्म न हो । शीघ्र उपस्थित करो बन्दिनी साम्राज्ञी को !...”

साम्राज्ञी उपस्थित की गई । एक बालक ने अपने वस्त्र का एक भाग अपने सर पर डालकर थोड़ा सा घूँघट निकाल लिया था—वही साम्राज्ञी का नाट्य कर रहा था । पर्णिक की माता आश्चर्य-विस्फारित नयनों से अपने पुत्र का वह अद्भुत अभिनय देख रही थी ।

“साम्राज्ञी !”—सम्राट् ने गरजकर पुकारा—“तुमने मुझसे असत्य भाषण कर महान् अपराध किया है । क्या तुम्हें अपने अपराध का दंड स्वीकार है ?”

“दासी को राजाशा कभी अस्वीकार न होगी”—साम्राज्ञी ने कहा । सम्राट् ठुड़ी पर हाथ देकर न जाने किस विचार में निमग्न हो गये, परन्तु कुछेक क्षण पश्चात् एकाएक वे उठ खड़े हुए । मन्त्री भयभीत स्वर में चिल्ला उठा “दया !...क्षमा !....”

सम्राट् ने मन्त्री की ओर एकबार क्रुद्ध नेत्रों से देखा, पुनः तीव्र स्वर में बोले—“साम्राज्ञी तुम्हें आजन्म निर्वासन की दंडाशा सुनाई जाती है”—सम्राट् का गर्जन चारों ओर गूँज उठा । द्वार पर बैठी हुई पर्णिक की माता न जाने क्यों भय से सिहर उठी ।

सम्राट् की मुखाकृति एकाएक वेदनाच्छन्न हो उठी । उनके नेत्रों के कोरों पर अश्रु कण छलछला आये—“साम्राज्ञी ! तुम आजन्म निर्वासन भोगो और तुम्हारे प्रेम का अनन्य पुजारी मैं, यहाँ राज्यप्रकोष्ठ में उपस्थित रहकर सुख शैल्या पर विश्राम करूँ ?—यह नहीं होगा”—सम्राट् की वाणी सिक्त थी—“प्रजाजनों !....” सम्राट् ने सामने की ओर देखा—“मैंने सम्राट् बनकर न्याय किया, अब प्रेम का अनन्य पुजारी बनकर मैं साम्राज्ञी का साथ दूँगा, साम्राज्ञी के साथ बनस्थली में रहकर अपने न्याय का प्रतिपालन करूँगा...व्यर्थ है, रोकने की चेष्टा

व्यर्थ है ।...मैं जाऊँगा ही..." सम्राट् राज्यसिंहासन से नीचे उतर आये और आगे बढ़कर उन्होंने साम्राज्ञी का हाथ पकड़ लिया—"चलो साम्राज्ञी ! सुखों के उपभोग में तुम्हारा साथ दिया है मैंने, तो निर्वासन में विलग कैसे रह सकता हूँ !..." सम्राट् साम्राज्ञी को लेकर, आगे की ओर बढ़ चले । सब की आँखें सिकु हो आईं । कोई उच्च स्वर में गा उठा—"जाओ जाओ ऐ मेरे साजन ! रुक न सको तो !..."

"पर्णिक !"—पर्णिक की माता का उद्दीप्त स्वर सुनाई पड़ा । सम्राट् का यह नाट्य करते हुए पर्णिक की सारी तन्द्रा विलीन हो गई । वह उतावली के साथ दौड़ आया अपनी माता के पास—"क्या है माता जी ?"—उसने देखा, उसकी माता की मुखाकृति गम्भीर एवं वेदनापूर्ण थी ।

"इस स्वांग की रचना तूने कहाँ से सीखी ?"

"मैंने इसे आज स्वप्न में देखा था माताजी !" पर्णिक ने कहा—
"मैंने देखा था कि एक रानी ने राजा से असत्य भाषण कर महान् अपराध किया । न्यायकर्त्ता राजा, रानी को राजदण्ड देने को प्रस्तुत हुआ—परन्तु उसने क्या दंड दिया, यह मुझे स्मरण नहीं रहा । आज प्रातःकाल ही से मैं यह सोचने का प्रयत्न करता आ रहा हूँ कि स्वप्न में उस राजा ने अपनी रानी को कौन-सा दण्ड दिया था—मगर वह बात तो स्मृतिपट से एकदम विलुप्त हो गई । विवश होकर मैंने अपनी ही बुद्धि से दण्ड की व्यवस्था सोची । मेरे न्याय करने में कोई त्रुटि थी क्या माताजी !..."

पर्णिक की माता के नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो चले—"मैं बहुत चाहता हूँ माताजी !..." पर्णिक पुनः बोला—"कि मैं कहीं का सम्राट हो जाऊँ, परन्तु...कैसे होते हैं सम्राट माताजी !...हमों जैसे तो !...अब तो हम नित्यप्रति ही इस स्वांग को करेंगे ।"

"नहीं बत्स । इस स्वांग को फिर कभी न खेलना—भला !"—

पर्णिक की माता ने कहा—“जाओ, तुम्हारे साथी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।”

सरल पर्णिक ने अपनी माता के हृदयगत विचारों को मनन करने का तनिक भी प्रयत्न न किया और तेजी के साथ अपने साथियों के पास चला गया—“भाई ! अब हम यह स्वांग कभी न खेलेंगे । माताजी को दुःख होता है”—उसने अपने साथियों से कहा । सब क्रीड़ा करते हुए कुछ आगे बढ़ चले ।

उधर से नायक का पुत्र आ रहा था—“देखो जी !....” एक लड़के ने उससे कहा—“आज पर्णिक ने एक अद्भुत स्वांग रचा था ।”

“अच्छा !...” नायक-पुत्र ने विचित्र भंगिमा से नेत्र संचालन किया ।

“तुम तो ये ही नहीं—नहीं तो देखते कि पर्णिक सम्राट बना था । एकदम सम्राट-सा लग रहा था”—

“कौन बना था सम्राट !...यह पर्णिक !...” नायक पुत्र ने घृणा से मुखाकृति टेढ़ी की—“जिसके जन्मवंश का पता नहीं, जिसके पिता का पता नहीं, वह सम्राट बने !...जिसकी माता...”

“सावधान !...” पर्णिक ने दौड़कर नायकपुत्र का मुँह पकड़ लिया—“माता जी के लिये कोई अपशब्द न निकालना, नहीं तो जिह्वा पकड़कर मरोड़ दूँगा...”

“तुम अनाय मेरी जिह्वा पकड़कर ऐंठ दोगे !....जाओ, हट जाओ, नहीं तो...”

उसी क्षण क्रुद्ध पर्णिक ने अपने हाथ की लकड़ी से नायकपुत्र की पीठपर कई प्रहार कर दिये । नायकपुत्र क्रोध से बड़बड़ाता हुआ अपने पिता के पास गुहार लेकर चला गया । कुछ ही देर बाद वह अपने पिता के साथ लौटा ।

“क्या है पर्णिक !...यह कैसा घृणित कार्य प्रारम्भ कर दिया है तुने !”—पूछा नायक ने ।

“देखो न पितृव्य ! इसने मेरी माता के सम्मान पर आघात करना चाहा था—” पर्णिक ने कहा ।

“बढ़ी आई है तेरी माता !” नायक गरज पड़ा—“एक दिन अनाथ होकर इधर उधर बनस्थली में भटकती हुई, दर-दर की ठोंकरें खाती हुई, तुझे गर्भ में लादे यहाँ आई थी । हमलोगों ने ही उसे आश्रय दिया था, हमलोगों ने ही उसे भोजन दिया था—वही आज बढ़ी सम्मान वाली बन गई है !”

“पितृव्य !...”

“चुप रह ! आज से यदि किसी बालक के मुँह लगा, तो किरात समुदायक से निकाल बाहर करूँगा । इतना बड़ा हो गया—उच्छृङ्खलता न गई !...जिसके पिता का ठिकाना नहीं, वह नायकपुत्र से बराबरी करे ! जा भाग...”

“.....” अपने उज्ज्वल मुखमंडल पर प्रखरतर कालिमा लेकर उदास हृदय पर्णिक अपनी माता के पास चला । उसकी माता द्वारदेश पर चिन्ता में निमग्न बैठी हुई थी । अपने पुत्र को, कालिमामंडित मुख लिये हुए आते देखकर, वह उठ खड़ी हुई—“क्या हुआ वत्स !...”

“मेरा पिता कौन है माताजी !”—पर्णिक ने आते ही मुँखा । उसके मुख पर बाल्य-चपलता के स्थान पर युवावस्था की गम्भीरता नर्तन कर रही थी ।

“क्या करोगे !”—

“सब तुम्हारा अपमान करते हैं माता जी !...कहते हैं कि....”

“कहने दो वत्स !”—उसकी माता ने एक दीर्घ निश्वास ली—“हमारा जीवन ही अपमान, अनादर एवं अवहेलना सहन करने के लिये है । इस संसार में अपना है ही क्या !...जाने दो पर्णिक ! जो कुछ भी जिसने कहा हो, उस पर ध्यान न दो । जब मैं आश्रयहीन होकर, तुम्हारा नन्हा सा शरीर अपने गर्भ में छिपाये, यहाँ आई थी—उस समय इन किरातों ने मुझपर असीम दया प्रदर्शित की थी । यह उन्हीं

की कृपा का प्रतिफल है वत्स ! कि तुम आज इतने बड़े होकर मुझ दुखियारी का संसार उज्ज्वल कर रहे हो । उसकी बातों पर ध्यान देना कृतधनता होगी...”

“तुम अभी तक मुझे अशक्त ही समझती हो माताजी ! परन्तु तुम भूल गई हो कि तुम्हारे प्रसाद से अब तुम्हारा पुत्र तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध लेने योग्य हो गया है....”

“किससे प्रतिशोध लोगे !”—

“जो भी तुम्हारा अपमान करेगा, जो भी तुम्हें अपशब्द कहेगा”—

“पर्यंक !....” पर्यंक का एक साथी आ गया—“तुम्हारे चले आने पर नायक तुम्हें ‘जार पुत्र’ कहता था ।”

“सुन रही हो माता जी !...सुन रही हो तुम !...अब भी कहती हो कि तुम्हारा अपमान देखकर मैं रक्त के घूँट पीकर सहन कर लूँ !... नहीं !...यह नहीं होगा....मैं आज ही, अभी ही, नायक से अपनी माता के अपमान का प्रतिशोध...” पर्यंक दौड़ चला ओपड़ी के भीतर, अपना कृपाण लेने ।

“वत्स !...”

“मुझे टोको मत माताजी !....मेरे रक्त में दौड़ती हुई दाहक अग्नि को अन्तस्थल में ही शमन न होने दो...मुझे आशीर्वाद दो... दो माताजी ! कह दो अपनी दैवीवाणी में कि वत्स ! अजय हो...”

“वत्स ! अभी तुम बालक हो—वह किरात समुदाय का नायक है—उसकी प्रबलता तुम किस प्रकार सहन कर सकोगे !...”

“विलम्ब हो रहा है—मुझे आज्ञा दो माताजी !...”

“जाओ वत्स !...परन्तु...”

पर्यंक कृपाण लिये हुए तीव्र वेग से दौड़ चला । हताश होकर पर्यंक की माता भूमि पर बैठ गई । उसका मुख अभ्रुप्लावित हो उठा ।

“नायक !...गरज कर बोला पर्यंक !” उसक हाथ का कृपाण तीव्र वेग से आलोकित हो उठा—“तुमने मुझे अपशब्द कहकर

मेरी माता का अपमान किया है। आज पर्णिक उसका प्रतिशोध लेने आया है...”

“लौट जा !...” नायक क्रोध से चिल्ला उठा—“जाकर अपनी माता की गोद में मुँह छिपा ले नादान बालक ! नायक की क्रोधाग्नि में भस्म होने की चेष्टा न कर !...”

“देख लो !...आज एक बालक का भी साहस देख लो ? आज एक अनाथ का भी शौर्य देख लो !...देख लो नायक ! कि अकारण किसी का अपमान करने से किस प्रकार दैव का प्रकोप टूट पड़ता है—किस प्रकार प्रलय के घन घहरा उठते हैं, किस प्रकार विद्युत का प्रबल आलोक भयानक अग्नि बनकर भस्मसात् कर देता है...”

अकारण ही कोलाहल सुनकर किरात समुदाय के कितने ही व्यक्ति घटनास्थल पर आ पहुँचे। पर्णिक की धृष्टतापूर्ण बातें सुनकर कुछ उसे पकड़ने के लिये आगे बढ़े, परन्तु नायक गरज उठा—“दूर रहो ! आज इस धृष्ट का प्राण शरीर से अलग होनेवाला है—आने दो इसे मेरे पास...”

“नायक ! तुम.....” एक वृद्ध किरात बोला—“...तुम एक अबोध बालक पर प्रहार करोगे !...हत्या का अपराध न लमेगा तुम्हें !...”

“समझाओ उसे !...समझा दो कि नायक से खेलना परिहास नहीं है।”

परन्तु पर्णिक ने किसी की न सुनी। उसने मन ही मन अपनी माता को प्रणाम किया, तत्पश्चात् कृपाण लेकर टूट पड़ा नायक पर। जिस अबोध बालक को नायक ने खिलौना समझा था—वह था शस्त्र-निपुण एक वीर्यवान् वीर दो ही चार प्रहार करने में नायक को ज्ञात हो गया कि पर्णिक से लोहा लेना खेल नहीं। उपस्थित किरात बालक-समुदाय पर्णिक की वीरता देखकर विमुग्ध था। पर्णिक का कृपाण तीव्र वेग से घूम रहा था। नायक का कृपाण भी अद्भुत गति से परिचालित

था । परन्तु पर्णिक की माता ने उसे जो शस्त्र-संचालन सिखाया था, वह अद्वितीय था, अनुपम था, अजेय था ।

तीव्र शस्त्र-संचालन में नायक का कृपाण एकाएक मध्य से विच्छिन्न हो गया । पर्णिक ने भी अपना कृपाण फेंक दिया और दोनों विकट प्रतिद्वन्दी मल्लयुद्ध करने लगे । पर्णिक की प्रतिभा अपूर्व थी, उसका शौर्य अद्भुत था, उसकी वीरता अनुपम थी । उसने कई बार नायक के पृष्ठ भाग को पृथ्वी का चुम्बन करा दिया । किरात समुदाय आश्चर्यान्वित होकर वीर पर्णिक की वीरता देख रहा था । पर्णिक की मुष्टिका अबाध गति से नायक के मुख पर, हृदय पर, अंग प्रत्यंग पर पड़ रही थी । नायक की वीरता क्रमशः विलुप्त होती जा रही थी । एकाएक वह अर्द्धचेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा । पर्णिक ने उसे उठाया—
“उठ कायर ! कहाँ गई तेरी वह वीरता ? कहाँ गया तेरा वह नायकत्व ? कहाँ गई ‘जार पुत्र’ कहनेवाली तेरी वह वीभत्स जिह्वा !...”

नायक शिथिल हो रहा था—“मुझे क्षमा करो पर्णिक !”...उसने दीनतायुक्त बाणी में कहा ।

“क्षमा करना मैंने नहीं सीखा है । आ ! उठ ! प्रहार करने की शक्ति हो तो प्रहार कर, नहीं तो मेरी माता के अपमान करने वाले शब्दों को वापस ले—नीच ! अधम ! पापी ! कायर ! !...” पर्णिक ने कई लात नायक को जमाया । नायक उस समय पूर्णतया विवश हो रहा था—“देख ले दुर्गचारी !...” पर्णिक ने गर्जना की—“आज एक आश्रयहीन बालक का शौर्य देख ले...आज देख ले कि एक देवी का अपमान करने का कैसा कुपरिणाम होता है । आज देख ले कि प्रजय का आवाहन करना कितना कष्टकर होता है । आज देख ले कि....”

“उफ़ ! तेरी जिह्वा !...” पर्णिक पुनः हुंकार उठा—“तेरी जिह्वा ने ही तो मेरी पुजनोया माता का अपमान किया था । तेरी जिह्वा ने ही तो नायकत्व के गर्व में ‘जारपुत्र’ कहा था । तेरी जिह्वा ने ही तो एक असहाय देवी का अपमान करके प्रजय का आवाहन किया था....”

पर्णिक ने दौड़कर अपना कृपाण उठा लिया और नायक के वक्ष पर चढ़ बैठा—“आज तैरी उस जिह्वा का समूल नाश कर दूँगा....”

“.....” नायक काँप उठा, उस विकराल युवक की मुखाकृति का अवलोकन कर ।

“समूल विनाश कर दूँगा—ताकि पुनः किसी अभागे को यह दुराचारिणी जिह्वा ! अपशब्द न कह सके । ताकि फिर किसी पूजनीया देवी का अपमान न कर सके”—क्रोध से पागल पर्णिक ने अपने तीव्र कृपाण द्वारा नायक की जिह्वा काट ली—कच ! कच !—उपस्थित किरात समुदाय ने अपनी आँखें बन्द कर लीं । किसी को भी उस विचित्र दुस्साहसी युवक को रोकने का साहस न हुआ । कैसे हो सकता था साहस ! जिस नायक ने किरात समुदाय के सभी प्राणियों को अपनी वीरता द्वारा वशीभूत कर रखा था—जब वही उस वीर युवक की क्रोधाग्नि में भस्मीभूत हो रहा था, तो दूसरा कौन अपने प्राणों पर खेजकर पर्णिक के कार्य में बाधा पहुँचा सकता था ?

क्रोधान्व पर्णिक ने नायक की टाँग पकड़ ली और उसे घसीटता हुआ अपने भोंपड़े की ओर चल पड़ा । विस्मित किरात समुदाय ने बिना एक शब्द बोले उस वीर युवक का अनुसरण किया ।

“लो माताजी ! यह है वह दुराचारी नायक !....” पर्णिक ने नायक के शरीर को अपनी माता के चरणों पर ढकेल दिया—“और यह है इस उच्छृङ्खल की जिह्वा !....” पर्णिक ने नायक की कटी हुई रक्तंजित जिह्वा अपनी माता के समक्ष भूमि पर फेंक दी । उसकी माता ने अपने नेत्र आवेग से बन्द कर लिये ।

“वत्स !....” वह अस्तव्यस्त वाणी में बोली ।

“यह है तुम्हारे प्रखरतर अपमान का प्रतिशोध !...” पर्णिक ने कहा । उसकी माता के नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ पड़े ।

“माताजी ! तुम्हारा पुत्र अब इस योग्य हो गया है कि तुम्हारी

सेवा कर सके। तुम जिस वेदना से, जिस व्यथा से, अहर्निश विदग्ध होती रहती हो, उसे मुझे बताओ। मैं प्राण देकर भी, अपना प्राण उत्सर्ग कर भी, तुम्हारी आकांक्षा पूर्ण करूँगा...बोलो !...माताजी बोलो !...”

“.....” उसकी माता मौन रही। केवल उसने एक बार अपने पुत्र के देदीप्यमान मुखमण्डल पर गर्वपूर्ण दृष्टि निक्षेप किया।

“वत्स पण्डित !...” एक वृद्ध किरात बोला—“आज से तुम किरात समुदाय के नायक हुए। तुम शौर्यवान हो—तुम जो कुछ आशा दोगे, वह किसी को अमान्य न होगी !—”

“नायक पण्डित की जय !...” किरात समुदाय नाद कर उठा।

और उसी दिन से पण्डित किरात समुदाय का नायक हो गया।



सुन्दर पुष्पों की मधुर गन्ध वहन करता हुआ पवन, पुष्पपुर के राजोद्यान में हिल्लोलें ले रहा था। स्वच्छाकाश से आती हुई चारु-चन्द्रिका अर्द्धप्रस्फुटित कलिकाओं का सुकोमल मुख-चुम्बन कर रही थी। मदमत्त पौधों की टहनियाँ, सौन्दर्य भार से दबो हुई पुष्पराशि का भार वहन करती हुई, मन्थर गति से अपना मास्तक हिला रही थीं, मानों प्रकृति नटी के उस अपूर्व हृदयोत्सासक सूजन पर अपनी स्वीकारोक्ति प्रदान कर रही हों। चारों ओर श्वेत स्फटिक से आच्छादित राजोद्यान के अनुपम सरोवर ने अपने वक्षस्थल पर जगत की सारी सुषमा का एकत्रीकरण कर लिया था। परमोज्ज्वल सलिलराशि के ऊपर आच्छादित अगणित कुमुदिनी के पुष्प एवं उनके विकसित श्वेतांगों पर मन-

मोहक एवं मुग्धकारी मुस्कान बिखेरती हुई चारु चन्द्रिका का दृश्य स्वर्गीय था। मरोचिमाली के रजत-किरीट की रश्मि राजोद्यान के कोने कोने में नृत्य कर रही थी। सान्ध्य-समीर के मृदुल हिलोलों से प्रकृति-नटी का मुख मुखरित हो उठा था। उद्यान एक अपूर्व शोभामयी रंगभूमि में परिणत हो गया था। वृक्षों का आलिंगन किये हुए लतायें आनन्द विलास कर रही थीं। विहंग-समूह नीड़ों में से मधुर स्वर-रागिनी अलाप रहा था। पल्लव-पल्लव विमल आलोक छुटा देदीप्यमान हो रही थी। कलिकायें मदमत्त हो रही थीं। लतायें आन्तरिक अनुराग का गीत गा रही थीं। प्रकृति शृंगारमयी होकर मानो किसी की प्रतीक्षा कर रही थी और साथ ही युवराज की प्रतीक्षा कर रही थी एक श्वेत स्फटिक आसन पर कलापूर्ण रीति से बैठा हुई सौन्दर्य की अनुपम प्रतिमा किन्नरी ! निहारिका। निहारिका की अतुल रूपराशि से राजोद्यान जैसे उन्मत्त-सा हो रहा था। कैसा आकर्षक, कैसा प्रोज्ज्वल, कैसा मनोरम, एवं कैसा शान्तिमय सजीव चित्र था वह !

“अभी तक नहीं आये श्री युवराज !”—अधिक विलम्ब होते देखकर किन्नरी अन्यमनस्क हो उठी थी—“आवेंगे भी, या नहीं—कौन जानता है !...वे हैं युवराज !...एक अधम किन्नरी के लिये वे क्यों इतना कष्ट उठावेंगे !...यह तो उनका कथन मात्र था, केवल शिष्टाचार था, कि राजोद्यान में मुझसे मिलना।”—प्रकृति निस्तब्ध थी। केवल एकाकी निहारिका बैठी हुई सन्तप्त हृदय से युवराज की प्रतीक्षा कर रही थी। उसके जीवन में आज यह प्रथम अवसर था, कि वह युवराज से एकान्त में भेंट करने आई थी।

पक्षे खड़के, और किन्नरी को विश्वास हो गया कि युवराज पधार रहे हैं। युवराज को सन्तप्त करने के लिये वह एक दीर्घाकार वृक्ष की ओट में जा छिपी। दूसरे ही क्षण युवराज आये—परन्तु युवराज की मुखाकृति ग्लान पड़ गई, यह देखकर कि अत्यधिक विलम्ब हो जाने पर भी किन्नरी निहारिका नहीं आई।

पार्श्व के वृक्ष की ओर से कुछ खड़खड़ाहट हुई। युवराज ने कोई जन्तु होने का अनुमान किया। उन्होंने झुककर भूमि पर से एक कंकड़ी उठाकर उसे वेग से उस वृक्ष की ओर फेंका। तुरन्त ही एक घीमी कराह को ध्वनि उस वृक्ष के पास से आई। युवराज आश्चर्यान्वित हो वहाँ पहुँचे। देखा—अपना बाम-मणिबन्ध पकड़े हुए निहारिका खड़ी है।

“निहारिका तुम !...” युवराज उतावली से बोल पड़े। किन्नरी ने झुककर युवराज को सम्मान प्रदर्शन किया।

“चोट तो नहीं आई !”—पूछा युवराज ने।

“नहीं !...” निहारिका ने कह दिया—परन्तु उसे थोड़ी-सी चोट अवश्य आ गई थी, जिससे हलका रक्तश्राव हो रहा था।

“चोट अवश्य आई है तुम्हें ! लाओ देखूँ ?” युवराज ने आगे बढ़कर किन्नरी का मणिबन्ध पकड़ना चाहा, परन्तु उसी समय प्रकृति की नीरवता को बेधता हुआ यह गीत प्रतिध्वनित हो उठा—‘मत छूना रे, वह मोती जो अनमोल कहाये’—अपने प्रकोष्ठ में बैठा हुआ चारण चक्रवाल वीणा के तारों पर यह गीत गा रहा था। उसकी स्वर-लहरी यहाँ तक आकर कर्णकुहरों में मधुवर्षा करने लगी। युवराज ने गीत से चौंककर अपना हाथ खींच लिया। किन्नरी के मणिबन्ध से दो बूँद रक्त टपक कर भूमि पर आ रहे।

‘यह क्या !...रक्तश्राव !...’ उतावली के साथ युवराज ने किन्नरी का मणिबन्ध अपने हाथ में लेकर देखा—“उफ़ ! यह तो क्षत हो गया है...” युवराज किन्नरी को लेकर सरोवर के पास आये। किन्नरी के ‘नहीं नहीं’ करने पर भी उन्होंने उसका घाव निर्मल जल से धोया, फिर अपने मूल्यवान मुकुटबन्ध का थोड़ा-सा भाग फाड़कर पट्टी बाँध दी। किन्नरी एक मादक-स्वप्न का आभास पाकर सिहर उठी।

“बटो !...” युवराज स्फटिक आसन पर बैठते हुए बोले। किन्नरी भूमि पर बैठने लगी,—“वहाँ नहीं, यहाँ बैठो...” युवराज ने उसे

उसी स्फटिक आसन पर बैठने का संकेत किया—“तुम कलामयी हो । तुम्हारा मैं आदर करता हूँ...”

“ऐसा न कहें श्री युवराज !...म्लान पुष्प को देव के मस्तक पर चढ़ने का भाग्य कहाँ !...”

“तुम म्लान पुष्प नहीं, हृदयोद्यान की प्रस्फुटित कलिका हो । कलामयी ! तुम अनुपम हो, अगम हो”—युवराज ने किन्नरी को हठ-पूर्वक उस स्फटिक आसन पर बैठा लिया—“तुम अद्भुत, कलापूर्ण हो—मैं तुम्हारा पुजारी हूँ । तुम अराध्य देवी हो—मैं उपासक हूँ । इन कला के इच्छुक नेत्रों में तुम्हारे प्रति अपूर्व श्रद्धा विराजमान है । कला के पूजन में उच्चता एवं नीचता का भाव नहीं रह जाता है किन्नरी !”—

“आप धन्य हैं श्री युवराज !...”

“धन्य हूँ !...” युवराज मन्द मुस्कान कर उठे—“धन्य नहीं, केवल कला का अनन्य भक्त हूँ मैं । जिस प्रकार चक्रवाल के गायन कला की उपासना करता हूँ, उसी प्रकार तुम्हारे नर्तन कला की ।... वास्तव में प्रकृति देवी के अद्भुत कला की अनुपम प्रतिमा इस जगतीतल पर साकार रूप धारण करके आ गई है—तुम्हारे रूप में !...”

“.....” किन्नरी के हृदय में मृदुस्पंदन हो रहा था ।

“किन्नरी !...”

“देव !...”

“तुम्हें कष्ट हुआ होगा यहाँ आने में...”

“कष्ट किस बात का होगा ! भला देव की आज्ञा पालन करने में देवदासी को कष्ट होगा !...” हास्य कर उठी सौन्दर्य की ‘वह’ अनुपम राशि । उसकी प्रोज्ज्वल दन्तपक्तियाँ विद्युत रेखा-सी चमक उठी—
“श्री युवराज ने मुझे किस हेतु यहाँ आने की आज्ञा दी थी ...?”

“इसीलिये कि एकान्त में तुम्हारी कला का विधिवत पूजन कर सकूँगा”—

“तो क्या श्री युवराज की यह आज्ञा है कि मैं किसी नृत्य का प्रदर्शन करूँ ?”

“रहने दो ! तुम्हें कष्ट है...तुम्हारा हृदय व्यथित हो रहा है...”

“श्री युवराज का तात्पर्य ?”—किन्नरी ने अर्द्धोन्मिलित नयनों द्वारा युवराज की ओर देखा ।

“...यही कि तुम्हारा मणिवन्ध क्षुब्ध है...पीड़ा होगी...”

बड़ी देर तक दोनों मौनावस्था में स्फटिक आसन पर बैठे रहे । नीलाकाश से धवलचन्द्र अपनी मंदिर-मुस्कान बिखेर रहा था—परन्तु लज्जित हो रहा था, युवराज के पार्श्व में बैठे हुए उस अनपम भूचन्द्र का अवलोकन कर ।

“अब जाओ निहारिका ! देर होगी तुम्हें....” युवराज ने कहा और उठ खड़े हुए । निहारिका भी उठ खड़ी हुई—“यदि सकुशल रहा, तो फिर कल प्रातःकाल मन्दिर में मिलन होगा...”

“महामाया की माया से श्री युवराज चिरकाल तक सकुशल रहेंगे”—किन्नरी बोलीं और उसने झुककर युवराज को अभिवादन किया ।

उस समय, जब कि रात्रि की भयानक निस्तब्धता यावत् जगत पर आच्छादित थी, किन्नरी निहारिका अपने प्रकोष्ठ में बैठी हुई न जाने किस प्रगाढ़ चिन्ता में निमग्न थी । उसके मणिवन्ध पर अभी तक युवराज के मुकुटबन्ध का वह टुकड़ा बँधा हुआ था । उसने सावधानी से उसे खोला और मस्तक से लगाकर उसे यत्नपूर्वक एक स्थान पर रख दिया । पुनः वह चिन्ता में निमग्न हो गयी । कदाचित् वह युवराज के विषय में ही चिन्तन कर रही थी—तभी तो कभी कभी वह उन्मत्त दृष्टि उठाकर युवराज के मुकुटबन्ध के उस धवल टुकड़े की ओर देख लेती थी । मानवी हृदय में उथल पुथल होता ही रहता है—परन्तु कभी कभी वह इतनी पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है । कि सहन शीलता उसका वहन करने में पूर्णतया असमर्थ हो जाती है ।

पार्श्व के प्रकीर्ण में खिड़की के पास बैठा हुआ चक्रवाल धवल चन्द्रिका का कल्लोल देख रहा था—और उसकी स्वर लहरी भी मधुर गति से प्रवाहित हो रही थी। वह गुनगुना रहा था—

जो केलि कुंज में तुमको, कंकड़ी उन्होंने मारी।

क्या कसक रही वह अब भी, तेरे उर में सुकुमारी।

X

X

X

आज फिर वही दृश्य ! तारिका-जड़ित आकाश के वक्षस्थल पर अपनी प्रभा विखेरता हुआ चंद्र, राजोद्यान के सरोवर में विकसित होती हुई कुमुदिनी-कलिकायें और स्वच्छ स्फटिक आसन पर बैठे हुए युवराज नारिकेल, किन्नरी निहारिका एवं चारण चक्रवाल। रात्रि का प्रगाढ़ अन्धकार चार चन्द्रिका का आलिंगन कर यावत् जगत पर एक असहनीय विकलता छिटक रहा था। धवल चन्द्रिका का वह नृत्य-सन्तप्त हृदयों को अधिकाधिक सन्तप्त कर रहा था। युवराज एवं किन्नरी बैठे थे मूक होकर—चक्रवाल भी शान्त था। पक्षियों का गुञ्जरित कलरव रात्रि की निस्तब्धता में विलीन हो गया था।

“आप व्यग्र क्यों हैं श्री युवराज !”—छा चक्रवाल ने।

“व्यग्र !...व्यग्र तो नहीं हूँ !”—युवराज ने कहा—“मैं उत्सुक दृष्टि से उस प्रदीप्त चन्द्र को देख रहा था एवं सोच रहा था कि कितना सुगंधकारी एवं कलापूर्ण नृत्य है उसका, स्वच्छाकाश के वक्ष पर !”

“श्री युवराज का हृदय कितना उदार एवं कैसा निर्मल है !”—किन्नरी ने मधुर स्वर में कहा।

“क्या श्री युवराज इस भूचन्द्र का कलापूर्ण नर्तन न अवलोकन करेंगे ?”—चक्रवाल ने किन्नरी की ओर संकेत कर कहा।

“क्यों नहीं !...अवश्य देखूँगा !...कलामयी सुन्दरी ! तुम अपना अपूर्व नर्तन प्रारम्भ कर दो....”

कटि-प्रदेश पर किंचित बल देकर सुन्दरी निहारिका उठ खड़ी हुई—उसके नूपुर बज उठे छूम ! छूम ! चक्रवाल ने अपनी वीणा हाथ

में ली। उसकी सिद्ध अँगुलियाँ अविराम गति से वीणा के भङ्कृत तारों पर नृत्य करने लगीं। मुग्धकारी स्वर वीणा के तारों से प्रवाहित होकर नूपुर-ध्वनि का आलिंगन करने लगा। दोनों स्वरो के सम्मिश्रण से प्रकृति निस्तब्ध, निश्चल हो उठी। वे दोनों श्रेष्ठतम कलाकार अपनी अपनी कला में पूर्णतया तन्मय हो गये। चक्रवाल अपनी वीणा पर एक गत बजाने लगा। किन्नरी के नूपुर उसी गत का सहयोग देते हुए श्रावध, किन्तु मधुर गति से गुञ्जरित होने लगे।

किन्नरी का स्थान स्थान पर 'बल' खाता हुआ ललितांग कभी युवराज के सन्निकट, कभी इतस्ततः नर्तन करता रहा। युवराज मन्त्रमुग्ध दृष्टि से उस अपूर्व दृश्य का अवलोकन करते रहे। उस युवती किन्नरी की प्रतिभा अपूर्व थी, अनुपमेय थी। सुन्दरी निहारिका का वह कलापूर्ण नर्तन, मानो राजोद्यान की विलासमयी भूमि पर नहीं, वरन् युवराज के हृदय प्रदेश में हो रहा था। युवराज अनिमेष नयनों से किन्नरी के मुख पर कल्लोल करती हुई चन्द्रिका का अवलोकन कर रहे थे।

वीणा की मधुर भङ्कार के साथ चक्रवाल की स्वर-लहरी अलाप उठी—

जो केलि कुञ्ज में तुझको, कंकड़ी उन्होंने मारी।

क्या कसक रही वह अब भी, तेरे डर में सुकुमारी।

निहारिका काँप उठी—युवराज विचलित हो उठे। चक्रवाल का वह गायन सुनकर किन्नरी को ऐसा लगा, मानो वह उस गायन का भाव अपने नृत्य द्वारा व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ है। युवराज चिल्ला उठे—“मत गाओ यह गायन”—परन्तु चक्रवाल तन्मय था, उसकी स्वर-रागिनी में तनिक भी शिथिलता न पहुँची। वह गाता ही रहा। निहारिका ने एक क्षण में ही अपनी भंगिमा ठीक कर ली। उसके अंग प्रत्यंग पूर्ववत् गायन का भाव व्यक्त करने में तत्पर हो गये। उसने पहले उद्यान में बने हुए एक सघन निकुञ्ज की ओर अपनी

तर्जनी द्वारा संकेत किया, फिर कलापूर्ण गति से झुककर भूमि पर से एक कंकड़ी उठाई और उसे सामने की ओर फेंका—पुनः तीव्र गति से सिसकारी भरती हुई वह भूमि पर बैठ गई, मानों वह कंकड़ी उसी को आकर लगी हो। इस प्रकार उसने—“जो केलिकुंज में तुमको, कंकड़ी उन्होंने मारी”—का भाव प्रदर्शित किया।

गायन एवं नर्तन रुक गया—तीव्र गति से अपने पिछले पैरों पर बनराज जम्बुक को दौड़े आते हुए देखकर। उसे घबड़ाई हुई भंगिमा से आते देखकर युवराज को कुछ शंका हुई। उन्होंने उससे पूछा—“क्या है जम्बुक ?”

जम्बुक ने अँगुली से सामने की ओर संकेत किया, पुनः हथेली हवा में घुमाकर युवराज को वहाँ से शीघ्र चले जाने का संकेत किया, मगर युवराज कुछ समझ न सके—“कौन आ रहा है जम्बुक !...”

जम्बुक ने अपना मस्तक पीट लिया। उसी समय सब चौंक पड़े, यह देखकर कि राजोद्यान के मुख्य द्वार से महापुजारी की उग्र मूर्ति उधर ही की अग्रसर होती आ रही है। महापुजारी आकर युवराज आदि के समक्ष खड़े हो गये। युवराज ने उनके चरण छुए। महापुजारी ने तीक्ष्ण दृष्टि से युवराज के नेत्रों में देखा, पुनः गम्भीर स्वर में शुभाशीर्वाद दिया। एक क्षण सन्नाटा रहा।

“तुम लोग जाओ !...” महापुजारी ने किन्नरी, चक्रवाल तथा जम्बुक को आज्ञा दी। तीनों आशंकित हृदय लिए हुए चले गये।

“बैठिये श्री युवराज !...” महापुजारी उस स्फटिक आसन पर बैठते हुए बोले।

“श्री युवराज !...” महापुजारी के स्वर में तीव्रता थी।

“आज्ञा !...” युवराज का हृदय धड़क रहा था।

“क्या हो रहा था यहाँ !...”

“कुछ तो नहीं महापुजारीजी !”—युवराज ने संयत वाणी में

“कुछ नहीं !...आप कहते हैं कुछ नहीं हो रहा था !...” महापुजारी का स्वर उत्तरोत्तर तीव्र होता जा रहा था—“चन्द्रकुटा परिपूरित रात्रि में, कुमुदिनि का प्रस्फुटित श्वेतांग देखकर, प्रकृति देवी का यह अद्भुत सृजन अवलोकन कर, मन स्वभावतः चलायमान हो जाता है...मैं पूछता हूँ आप से श्री युवराज ! आप मुझे समझाएँ कि यहाँ किस प्रलय की सृष्टि रची जा रही थी !....”

“महापुजारीजी !....”

“मैं स्पष्ट उत्तर चाहता हूँ...नहीं तो मुझे श्री सम्राट् के समक्ष यह बात कहनी पड़ेगी...”

“पिताजी के समक्ष !...क्यों !...क्या आप यह समझते हैं महापुजारीजी ! कि आप मेरे कोई नहीं हैं ? क्या आप मेरे पितातुल्य नहीं ! क्या आप को मुझे दंड देने का अधिकार नहीं ! क्या आपके आज्ञा की अवहेलना करने की शक्ति मुझमें है !...महापुजारी जी ! आप का प्रोज्ज्वल हृदय आज ऐसे मलिन विचारों में क्यों तल्लीन हो रहा है !...आप कहिए, यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो, तो मुझे दंडाज्ञा दीजिये—मैं प्रस्तुत हूँ”—युवराज ने महापुजारी के चरण पकड़ लिये ।

“वत्स !...” एकाएक महापुजारी का स्वर शान्त हो गया—“तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा पर ध्यान रखना परमावश्यक है । तुम जम्बूद्वीप के भावी सम्राट् हो—अपने किसी काम से, अपने किसी भाव से, अपने ऊपर कलंक-कालिमा न लगाना । देख रहे हो, इस कलंक की चन्द्र को !...इतना धवल होते हुए भी, क्या कलंक से बच सका है !.... मनुष्य का हृदय निर्मल होता है, एवं निर्बल भी । तनिक-सा फिसल पड़ने पर जन्म पथ्यन्त के लिए कलंक लग जाता है । आज से तुम सावधान रहना...आओ मेरे साथ...” महापुजारी घूम पड़े । युवराज ने उनका अनुसरण किया ।

चार चन्द्रिका की श्री जाती रही। कुमुदिनि कालिकाओं ने अपने नेत्र बन्द कर लिये। पल्लव विकलता से झिल पड़े। वायु प्रकम्पित हो तीव्र गति से प्रवाहित हो उठा।—बैठी हुई कोयल करुण स्वर से कूक उठी।



मनोरम बनस्थली के क्रोड़ में रहनेवाले किरात समुदाय की ओर एक बार पुनः आइये। एक सघन पर्कटी वृद्ध के नीचे कुछ वृद्ध एवं युवक किरात वार्तालाप करने में तल्लीन हैं। भगवान् अंशुमाली की अन्तिम किरण-राशि अब भी इतस्तः गगनचुम्बी वृद्धों को चोटियों पर नृत्य कर रही थी। सन्ध्या समीर मृदुल गति से हिलजोलें ले रहा था छांत पक्षीगण अपने नीडों की ओर मधुर कलरव करते हुए तीव्र वेग से उड़े जा रहे थे।

“भाई ऐसा नायक किरात-समुदाय के विगत इतिहास में सदस्रों वर्षों से नहीं हुआ” —एक किरात कह रहा था—“पर्णिक ने नायकत्व का कार्य जिस योग्यतापूर्वक ग्रहण किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है—जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है...”

“इतनी छोटी अवस्था में इतनी योग्यता का आना, भाई हम तो दैवी मानते हैं”—एक वृद्ध ने कहा—

“हमने इन दोनों, माता पुत्रों पर, बहुत अन्याय किया था—मगर आज उसके लिये पश्चात्ताप हो रहा है, पर्णिक की योग्यता देखकर। नहीं मालूम था कि संसार से ठुकराई हुई एक अभागिनी का पुत्र आज इस प्रकार नायकत्व ग्रहण करेगा !...” एक दूसरे ने कहा।

“उसके नायक होते ही, देखो, कितना ही आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है हममें एवं समग्र किरात-समुदाय में। उसने मानों हमारे बर्जर-मृतप्राय शरीर में ऊष्ण रक्त एवं नवस्फूर्ति भर दी है...”

“पहले हममें से कितने ऐसे थे, जो शस्त्र-संचालन की विद्या पूर्णरूप से नहीं जानते थे?...आज पर्णिक की कृपा से हमलोगों ने भली प्रकार अस्त्र-विद्या सीख ली है। कम से कम अपना बचाव तो कर ही सकते हैं...पर्णिक की माता ने ही अपनी अपूर्व शिक्षा द्वारा उसे इतना बोर बनाया है। अवश्य वह कोई स्वर्गीय देवी है।...”

क्रमशः सन्ध्या का आगमन होने लगा। साथ ही उदय होते हुए भगवान मरीचिमाली की शुभ्र ज्योत्सना अपनी आभा हरित जंगल पर बिखेरने लगी। किरात-समुदाय के सभी व्यक्ति—अबाल वृद्ध—उस स्थल पर आने लगे। नित्य सन्ध्या को सब लोग वहाँ एकत्रित होते थे और नाना प्रकार के विषयों पर वार्तालाप करते थे। नायक पर्णिक को आते हुए देखकर सब लोग उठ खड़े हुए। पर्णिक एक ऊँची शिला-खण्ड पर आकर बैठ गया।

बहुत समय तक वहाँ वार्तालाप होता रहा। अन्त में दो प्रहर रात्रि व्यतीत हुए जब वह अपने भोपड़े में आया, तो उसने देखा कि उसकी माता भूमि पर पड़ी हुई सिसक रही है। दीपक की ज्योति में उसकी माता ने नेत्रों से अश्रुबिन्दुओं का निरंतरण स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रहा है। साथ ही पर्णिक के उत्सुक नेत्रों ने देखा कि उसकी माता के हाथ में कोई प्रकाशमान वस्तु है।

पर्णिक घबड़ाया हुआ भोपड़े के भीतर आ रहा—“माता जी !...” उसने पुकारा ! उसकी माता चौंक पड़ी, उसका स्वर सुनकर। उसने शीघ्रतापूर्वक अपने अञ्चल में कोई वस्तु छिपाई, पुनः अपने नेत्रों से अश्रुकरणों का निवारण करती हुई बोली—“आओ वत्स !...”

“तुम रो क्यों रही हो माता जी !” पर्णिक उसके पास बैठ गया—

“तुम्हें ऐसी कौन-सी व्यथा, ऐसी कौन-सी वेदना, ऐसा कौन-सा दुख है—जिससे तुम सदैव व्याथत रहा करती हो ! वह कौन-सी शोचनीय पीड़ा है, जिसे तुम अपने पुत्र से भी कहने में संकोच कर रही हो !... बोलो ! मैं तुम्हारे सुख के लिये सब कुछ कर सकता हूँ माता जी ! यदि मेरे जीवनोत्सर्ग से तुम्हें शान्ति मिल सके, तो मैं सहर्ष अपने जीवन को तुम्हारे चरण-कमलों पर उत्सर्ग कर सकता हूँ । जिसने अपने रक्त-मांस से मेरा पालन-पोषण किया, जिसने दुरुह यातनायें सहन कर मेरी रक्षा की, जिसने अनादर और अपमान झेला—केवल मेरे हेतु...ऐसी जननी के लिये मुझे कोई भी वस्तु अर्पण नहीं हो सकता । बोलो माता जी !... परीक्षा का समय है—मातृ-ऋण से उऋण होने का अवसर दो, आज्ञा दो माता जी ।”

“मुझे कोई भी दुःख, कोई भी व्यथा नहीं है वत्स !...”

“माता जी ! मुझे दुःख है कि आज तक तुमने अपना पूर्व इतिहास न बताया, इस समय अपने दुःख का कारण भी नहीं बता रही हो, पुत्र पर ऐसा अविश्वास क्यों !”

“अविश्वास !...”

“अविश्वास ही तो है यह ?...तभी तो तुमने मुझे देखते ही न जाने कौन वस्तु अपने अंचल में छिपा ली है”—उसकी माता चौंक पड़ी—
“माताजी ! जिस पावन अंचल में अब तक पणिक ने क्रीड़ा की है, उसमें अब वह कौन-सी ऐसी पवित्र एवं मूल्यवान वस्तु है, जो क्रीड़ा कर रही है !...मुझे बताओ माता जी ! कोई बात मुझसे गोपनीय रखकर मुझे असीम वेदना से विदग्ध न करो...”

“वह कुछ नहीं है पणिक !...”

“कुछ क्यों नहीं है माता जी ! वह बहुत कुछ है तभी तो पणिक से भी बढ़कर उसका आदर है, उसका प्रेम है”—पणिक अपनी माता के सन्निकट आ रहा—“मैं उस वस्तु को अवश्य देखूँगा”—और उसने हठपूर्वक माता के अंचल से वह वस्तु निकाल ली । वह था एक

रत्नहार, जिसकी देदीप्यमान प्रभा उस छोटे से भोंपड़े को आलोकित कर उठी ।

“रत्नहार !...” चौंक पड़ा पर्णिक...माता जी ! यह मूल्यवान रत्नहार तुमने कहाँ से पाया ? इस दीन भोंपड़े में यह अगम वैभव कहाँ से आ पड़ा ?....”

पर्णिक की माता के नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो चले—“वत्स ! इस पवित्र रत्नहार को प्रणाम करो”—उसने कहा । पर्णिक ने उसे मस्तक से लगाया ।

“यह कहाँ से आया माता जी !”—उसने पूछा । उसकी माता कुछ न बोली, केवल पर्णिक के हाथ से वह हार लेकर यत्नपूर्वक एक गोपनीय स्थान पर रख दिया ।

“तुम्हें क्या वेदना है माता जी !...”

“जाने दो वत्स ! चलो भोजन कर लो”—

“कैसे भोजन कर लूँ माता जी !...तुम चिन्ता में विदग्ध हो, और मैं झुधा शान्त करूँ !...पहले मैं तुम्हारी चिन्ता शान्त करूँगा माता जी !...”

“वह तो चिन्ता पर ही शान्त होगी पर्णिक !...”

“नायक !...” भोंपड़ी के द्वार पर से किसी ने पुकारा । पर्णिक झपट कर बाहर आया । देखा, एक वृद्ध किरात खड़ा था—“क्या है ?...है क्या पितृव्य !...” उसने पूछा ।

“भैया ! सीमान्त से दुर्मुख एक आवश्यकीय समाचार लेकर आया है । सब लोग एकत्रित हैं तुम भी चलो !...”

“कौन-सा आवश्यक कार्य है !...”

“अत्यन्त आवश्यक !...” वृद्ध किरात ने कहा ।

“मैं चलता हूँ”—पर्णिक बोला—“माताजी ! कोई आवश्यक कार्य आ पड़ा है । मुझे जाने की आशा दो—”

“जाओ वत्स !”—माता ने कहा । पर्णिक ने झुककर उनके

चरण छुए, पुनः उस वृद्ध किरात के साथ उस ओर चल पड़ा, जहाँ समग्र समुदाय उत्सुक नेत्रों से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। सभी के नेत्रों पर आसन्न भय के लक्षण स्पष्टतया दृष्टि गोचर हो रहे थे। पर्णिक के आते ही सब उठ खड़े हुए। पर्णिक ने स्थिर दृष्टि से एक बार सबके के मुख पर अवस्थित भय का लक्षण देखा, तत्पश्चात् अपने आसन पर जा बैठा।

“कहाँ है दुर्मुख ?”—उसने पूछा। एक किरात युवक ने आकर उसे झुककर अभिवादन किया, पुनः बोला—“क्या आज्ञा है नायक ?”

“तुम अभी सीमान्त से आ रहे हो ?”—पूछा पर्णिक ने।

“हाँ !...परन्तु...”

“क्या समाचार लाये हो ?”—

दुर्मुख का शरीर सिहर उठा, परन्तु उसने कहा—“नायक खट्वांग की घाटी (khyberpass) के उस पार एक प्रबल सेना आ पहुँची है। सम्भव है कि शीघ्र ही वह हमपर आक्रमण कर दे...”।

“किसकी सेना है वह ?”—

“सुना है कि मध्य अशान्त महाद्वीप (Asia) से आर्य सम्राट तिग्मांशु अपनी सेना लेकर देश विजय करने निकले हैं। वही हो सकते हैं...”

“इस प्रकार अनायास आक्रमण कर देने का तात्पर्य क्या है ?”—
पर्णिक तनकर बैठ गया।

“यह तो वही जानें। परन्तु गुप्तरीति से पता लगाने पर ज्ञात हुआ है कि आर्य जाति के रहने के लिये मध्य अशान्त महाद्वीप में स्थान की कमी है। अब वे अपना विस्तार देश विदेश में बढ़ाना चाहते हैं”—

“वह किस प्रकार ?”—

“देश विजय करके, वे उन देशों में अपनी जाति के मनुष्य बसायेंगे एवं अपनी आर्य-सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार करेंगे—यही उनकी आकांक्षा है”—

“परन्तु यह तो न्यायसंगत आक्रमण नहीं !”—

“बिना बलप्रयोग के किसी नये धर्म एवं नई संस्कृति का प्रसार नहीं होता नायक !”—दुर्मुख ने कहा—“यह समाचार इतना महत्वपूर्ण था, कि इसे तुम्हारे पास अतिशय प्रह्वित करना आवश्यक था । अब तुम्हीं सोचो कि इस विकट परिस्थिति में हमारा क्या कर्त्तव्य होगा !....”

“हमारा कर्त्तव्य !...” पणिक दुर्दमनीय विचारों में निमग्न हो गया ।

उपस्थित किरात समुदाय में धीरे-धीरे कानाफूसी होने लगी—
“यह समाचार शीघ्र से शीघ्र द्रविडराज के पास पहुँच जाना चाहिये”—एक ने धीमे स्वर में कहा—“राजनगर पुष्पपुर यहाँ से सोलह योजन दूर है—यदि तुरन्त ही किसी को न भेजा जायगा, तो अनर्थ होगा.....”

जब तक पुष्पपुर समाचार भेजा जायगा, तबतक तो उनकी सेना खट्वांग की घाटी पार करके हमारे प्रान्त में पहुँच जायगी और हमारा निवासस्थान नष्टभ्रष्ट कर देगी”—एक दूसरे ने कहा ।

“क्या खट्वांग जैमी दुरुह घाटी वे इतनी शीघ्रता से पार कर लेंगे ?”—पहले ने पूछा ।

“पुष्पपुर समाचार भेजने की कोई आवश्यकता नहीं”—तीसरे ने कहा—“द्रविडराज को अपने गुप्तचरों द्वारा अब तक यह समाचार मिल गया होगा, अथवा शीघ्र ही मिल जायगा । समाचार पाते ही द्रविडराज स्वदेश रत्ना का कोई न कोई यत्न करेंगे ही तबतक...”

“तबतक...” पणिक उच्च स्वर में बोला—“हमें ही स्वदेश रत्ना का भार ग्रहण करना पड़ेगा । भाइयो ! इस बिषय पर अच्छी तरह विचार करने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि ऐसे समय स्वदेश रत्ना का ग्रहण करना हमारा परम कर्त्तव्य है यदि हम अपने

समुदाय की पूरी शक्ति का प्रयोग करे, तो हम आर्य सम्राट की सेना को बहुत काल तक रोक सकते हैं !...”

“ठीक है !...” कई किरात साथ ही बोल उठे ।

“ठीक है, तो प्रस्तुत हो जाओ । आज समरांगण रक्तपिपासु दृष्टि से हमारी ओर देख रहा है । बलि होना है, तो स्वदेश पर बलि हो । मरना है, तो अपनी आन पर मर मिटो । चलो ! हमारे समुदाय में जितने नवयुवक हैं, सब शस्त्र लेकर प्रस्तुत हो जाँय । कल प्रातःकाल हमलोग प्रस्थान करेंगे—पर्णिक के तीव्र स्वर ने किरात युवकों में नव-चैतन्यता प्रवाहित कर दी ।”

X

X

X

X

“ऐसा न कहो माताजी !”—पर्णिक ने अपनी माता के चरण पकड़ लिये—“मेरे हृदय में स्वदेश-भक्ति की रागिनी बज उठी है । इतने दिनों तक वीरता का पाठ पढ़ाकर, अब भीरुता का पाठ न पढ़ाओ मेरे हृदय को पथ-भ्रान्त न बनाओ । एक वीर माता के समान मुझे युद्धक्षेत्र में जाने की अनुमति दो...दो न माता जी !...”

“वत्स ! कैसे आज्ञा दूँ तुम्हें ? आज तक जिसे एक क्षण के लिये भी नेत्रों की ओट न किया, उसे कैसे समरभूमि में जाने की कह सकती हूँ पर्णिक ! मत जाओ !...मत जाओ वत्स ! युद्धभूमि की प्रबलता का सहन करना परिहास नहीं है...”

“माता जी ! आज जब परीक्षा का समय आया, तो तुम मुझे दुरुह यातनाओं का स्मरण दिलाकर पथ विमुख करना चाहती हो ? जिसे आज तक तुमने वीरता के साथ मरने का उपदेश दिया, उसे आज तुम कायरता के साथ जीने का उपदेश दे रही हो ?...माता जी ! आज क्या हो गया है तुम्हें ?...मुझे जाने की आज्ञा दो । मैंने समग्र समुदाय को प्रातःकाल प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी है ।”

“तो जाओ पर्णिक ! मुझे अधिक दुःख न दो...”

पर्णिक पर वज्र गिर पड़ा—“उफ़ ! उसकी बातें सुनकर उसकी

माता को दुःख होता है ! क्या वही उसके दुःख का कारण है ?”
 पर्णिक को महान् ग्लानि हुई । वह चुपचाप झोपड़ी के एक कोने में
 पड़ रहा ।

×

×

×

“ऐसी आशा क्यों दे रहे हो नायक ?”—उस वृद्ध किरात ने
 कहा—“आज देश पर विपत्ति के बादल घहरा रहे हैं, एक विदेशी
 हमें पद-दलित करना चाहता है—यह देखते हुए भी तुम मौन होकर
 बैठ जाना चाहते हो !...”

“क्या करूँ ?...माता जी की आशा...” पर्णिक का मस्तक
 लज्जा से झुक गया ।

“कहाँ गया वह तुम्हारा सारा बल !...” भूतपूर्व नायक के पुत्र
 का तीव्र स्वर गर्जन कर उठा “कहाँ गया तुम्हारा वह पराक्रम ! कहाँ
 गई वह तुम्हारी अनोखी डींग—मेरी माताजी देवी हैं पूजनीया हैं !...
 इसी अपनी माता को वीर-प्रसविनी कहते थे ! इसी के गुणगान में अह-
 निंशि तल्लीन रहते थे !...बिकार है ऐसी कायर माता की सन्तान
 पर !...”

“चुप रहो !...चुप रहो... नहीं तो...”

“हाँ हाँ ! बन्द कर दो मेरा मुख, काट दो मेरी भी जिह्वा—तुम्हारे
 पास शक्ति है न ! पराक्रम है न !...क्या निर्बलों पर ही अपनी शक्ति
 का उपयोग करना तुम्हारी माता ने सिखाया है ! क्या असहायों पर ही
 अपनी शस्त्र-प्रतिभा दिखाना तुमने वीरता समझ रखी है ! बिकार है
 तुम्हारी माता के इस शिक्षण पर और तुम्हारे जैसे कायर एवं अन्धे
 मातृभक्त पर !

“.....” पर्णिक ने दोनों हाथ से अपने कान बन्द कर लिये ।

“तुम्हारी माता ने तुम्हें योग्य बनाया, तुम्हारी माता ने तुम्हें शस्त्र-
 संचालन सिखाया, तुम्हारी माता ने तुम्हें अतुलित शक्ति प्रदान किया...
 परन्तु आज वही तुम्हारी माता भीरुता का दिग्दर्शन करा रही है । आज

वही तुम्हें पथ-विचलित कर रही है, ऐसे समय जब कि तुम समरांगण में अपनी बलि देकर सदैव के लिये अपनी कीर्ति-कौमुदी उज्ज्वल कर जाते...तुम वीर हो, शौर्यशाली हो, निर्बलों एवं असहायों पर अपने प्रज्ज्वलित नेत्रों से क्रोध की वर्षा कर सकते हो—मगर अपनी माता के आशा के विरुद्ध एक भी सत्कार्य नहीं कर सकते ! तुममें इतनी शक्ति नहीं कि तुम अपनी माता की आशा की अवहेलना कर अपने उमङ्ग का साथ दे सको...तुम नपुंसक हो, कायर हो, भीरु हो” नायक पुत्र की व्यङ्ग्योक्त बातों से घबड़ाकर पण्डित अपनी माता के पास भामा ।

“मुझे आशा दो माता जी !....” पण्डित के नेत्रों में अश्रुविन्दु झलक आये थे । वह मातृभक्त वास्तव में बिना अपनी माता की आशा पाये, कुछ भी कर सकने में असमर्थ था—“देखो माता जी ! तनिक दृष्टि उठाकर आज किरात-समुदाय की ओर देखो ! सभी तुम पर वाक्-वाणों की वर्षा कर रहे हैं....”

“कहने दो वत्स ! दुख में ही तो हमारा जीवन प्रस्फुटित हुआ है !...”

“परन्तु तनिक अपने कर्तव्य पर ध्यान दो माता जी ! वीर प्रसविनी होकर अपने पुत्र को ऐसी भीरुता का पाठ पढ़ाना कितना अन्यायपूर्ण है ! तुम विचार भी नहीं कर सकती कि इस समय मेरे हृदय में तुम्हारी भीरुता ने कितनी दारुण शोर मचा दी है । मैं जल रहा हूँ—दुख एवं चिन्ताग्नि से । आज मैं साश्र्वर्य अनुभव कर रहा हूँ कि तुम्हारे मुख से इस समय मेरी माता के वीर हृदय नहीं, वरन् एक अनाथिनी दुखिया का कायर हृदय बोल रहा है । मैंने ऐसा नहीं समझा था...”

“वत्स !...”

“मुझे आशा दो माता जी !...” पण्डित ने अपनी माता के समक्ष घुटने टेक दिये । माता ने प्रेमपूर्वक उसके मस्तक पर अपना हाथ फेरा, तत्पश्चात् अञ्जल में से वही रत्नहार निकालकर उसकी गर्दन में डाल दिया—“जाओ वत्स ! यह अपनी अमूल्य निधि, यह पवित्र रत्नहार,

मैं तुम्हें प्रदान करती हूँ । यह परम कल्याणकारी है । इसे यत्नपूर्वक रखना । एक क्षण के लिये भी इसे अपने से विलग न करना, नहीं तो अनिष्ट होगा ।”

पर्णिक ने माता की चरण-धूलि मस्तक से लगाई । पुनः गर्दन में पड़े हुए उस मूल्यवान रत्नहार को मन ही मन प्रणाम किया—तत्पश्चात् उस ओर चल पड़ा, जिधर चार सौ शस्त्रधारी किरात युवक खड़े हुए उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे । पर्णिक को देखकर सबने जयघोष किया । शीघ्र ही वह किरात-सेना तीव्रगति से खट्वांग की घाटी की ओर अग्रसर हुई । पर्णिक की माता भोंपड़े के द्वार पर से उन वीरों का पद-संचालन तब तक देखती रही, जब तक कि सघन वनस्थली ने उन मदमत्त युवकों को अपने अञ्चल में छिपा न लिया ।



युवराज नारिकेल द्रविड़राज के प्रकोष्ठ के समक्ष आकर खड़े हो गये । द्वारपायक ने मस्तक झुकाकर युवराज को सम्मान प्रदर्शन किया—“पिता जी क्या कर रहे हैं ?”—युवराज ने द्वारपायक से पूछा ।

“प्रकोष्ठ में हैं । मध्यान्ह से बाहर नहीं निकले”—द्वारपायक ने पुनः सर झुकाया ।

“तुम उनसे कहो कि मैं उनके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ हूँ”—युवराज ने कहा । द्वारपायक सर झुकाकर प्रकोष्ठ के भीतर चला गया । कुछ ही क्षण बाद बाहर आकर वह बोला—“श्रीसम्राट आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।”

युवराज ने प्रकोष्ठ के भीतर प्रवेश किया । द्रविड़राज उस समय

सन्तप्त भंगिमा लिये, अभ्रुप्लावित नेत्रों से द्वारदेश की ओर देखते हुए बैठे थे—स्वर्णासन पर । उनके केश बिखरे हुए थे । कपोलों पर अभ्रु-विन्दु झलक रहे थे । शरीर शिथिल हो रहा था । मानों पिछली कई घड़ियों से वे चिन्ता सागर में गोते लगाते रहे हों ।

सम्राट् की दयनीय दशा देखकर युवराज को असीम वेदना हुई । यद्यपि आज के पहले भी युवराज सम्राट् को दुःखित एवं भ्लान देखा करते थे परन्तु आज सम्राट् की दशा देखकर युवराज का कलेजा मुख को आ गया । उनके नेत्र न जाने किस प्रेरणा से सिक्त हो उठे ।

“पिताजी !....” उन्होंने स्थिर वाणी में पुकारा ।

“आओ युवराज !”—द्रविड़राज ने अपनी करुण भंगिमा ठीक करने का व्यर्थ प्रयत्न किया—“आओ बैठो !”—युवराज आकर सम्राट् की शैया पर बैठ गये । कुछ क्षण तक मौन रहकर उन्होंने सम्राट् के हृदय की मूकवेदना को समझने की चेष्टा की ।

“आप दुःखित क्यों रहते हैं पिताजी !...” युवराज ने प्रश्न किया । द्रविड़राज ने युवराज की ओर सकरुण नेत्रों से देखा—“मैं आपसे यह पूछने की धृष्टता करता हूँ कि आखिर कारण क्या है ! नेत्रों में अभ्रुकण, मुख पर प्रखर वेदना का प्रतिरूप एवं अन्तस्तल में प्रज्वलित ज्वाला—इन सब का कारण क्या है ! आज तक मैं रुदित-हृदय से आपकी सारी व्यथा देखता आ रहा था—आज धृष्टता हूँ कि आपको कौन सी मानसिक अशान्ति क्लेश दे रही है !...बोलिये पिताजी !...”

“युवराज !...वत्स !....” पुत्र की सान्त्वनामयी कोमल वाणी को सुनकर द्रविड़राज का मर्मस्थल द्रवित हो गया—वे फूट-फूटकर रो पड़े, अपने फूटे भाग्य पर—“जाने दो वत्स ! मुझे कोई कष्ट नहीं है ।”

“कोई कष्ट नहीं है, कोई व्यथा नहीं है, कोई वेदना नहीं है !...” युवराज ने प्रश्न सूचक दृष्टि से द्रविड़राज के मुख पर देखा,

जिस पर कष्ट का साकार रूप, व्यथा की सच्चात् प्रतिमा एवं वेदना की प्रखर ज्वाला स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रही थी—“कैसे कहते हैं कि आपको कोई कष्ट नहीं है पिताजी !...देखिये ! तनिक अपनी म्लान मुखाकृति पर दृष्टिपात कीजिये—प्रतीत होता है, मानों जगत की समग्र वेदना का साम्राज्य छाया हो आपके नेत्रों के समक्ष ।...मुझे बताइये पिताजी ! अपने दुख का कारण मुझे बताइये ! यदि अपना प्राण देकर भी आपको प्रसन्न देख सकूँ, तो मेरा अहोभाग्य ।...”

“क्या करोगे सुनकर वत्स !...रहने दो । उस असीम वेदना का भार केवल मुझे ही वहन करने दो । जिस कठिन रहस्य को आज तक सावधानता पूर्वक तुमसे प्रच्छन्न रखा है, उसे आज सुनकर व्यथित होने की चेष्टा न करो ।”

“मैं उस भेद को सुनूँगा...अवश्य सुनूँगा । यदि आप बताने की कृपा न करेंगे, तो मैं समझूँगा कि इस संसार में एक ऐसी वस्तु है, जिसे श्री सम्राट युवराज से भी अधिक चाहते हैं....”

“ऐसा न कहो युवराज ! तुम्हारे अतिरिक्त इस जगती तल पर मेरा है कौन !...कौन है मेरे दुख का साथी ?”—सम्राट ने कहा—“तुम सुनना ही चाहते हो वह बात, तुम जानना ही चाहते हो वह गुप्त भेद !...सुनो !...” रो रोकर, हृदय पर पाषाण रखकर द्रविड़-राज ने अपने दुख की गाथा, अपनी वेदना की करुण कहानी युवराज के समक्ष अद्योपान्त सुना दी । अपनी अर्द्धाङ्गिनी राजमहिषी त्रिभारा को उन्होंने जो कटु न्याय-दंड दिया था और राजमहिषी के बिलुड जाने से उनके हृदय पर जो बीत रहा था—सब कुछ सुना दिया । वे बोले—“सब कुछ किया, अपने न्याय को अटल रखा; फिर भी मेरा न्याय अधूरा ही रहा । क्या न्याय यही कहता है कि पत्नी असह्य वेदना का भार वहन करती हुई निर्वासन का कष्ट भेले और उसका पति राज-भवन में विभ्राम करता हुआ सुखपूर्वक अपने दिवस व्यतीत करे !...एक साधारण त्रुटि ने मुझे विदग्ध कर रखा है युवराज !

मैं जल रहा हूँ, भयानक मानसिक वेदना से। जिस समय उसे निर्वासन दण्ड दिया था, उस समय वह गर्भवती थी....हाय ! आज वह न जाने कहाँ होगी ! कितनी खोज की—परन्तु न मिली...न मिली वह पूजनीया देवी !...”

युवराज के नेत्र अश्रुवर्षा कर रहे थे, उस करुण कहानी को सुनकर वे विचार कर रहे थे कि वास्तव में द्रविडराज का हृदय कितना न्यायपूर्ण एवं निर्मल है ! जीवन में आज प्रथम बार उन्हें माता का अभाव प्रतीत हुआ। उनका हृदय अपनी माता की करुणा पूर्ण गाथा सुनकर करुण क्रन्दन कर उठा।

“मैंने कठोर न्याय का पालन किया था, परन्तु अपने कर्तव्य का पालन न कर सका था...वह पवित्र रत्नहार भी, जिसके लिए यह सब हुआ, न जाने कहाँ लुप्त हो गया। पता नहीं कि राजमहिषी ही उसे अपने साथ लेती गई या किसी ने चुरा लिया। अवश्य ही किसी ने चुरा लिया होगा। राजमहिषी उसे अपने साथ नहीं ले जा सकी—यह मेरा दृढ़ अनुमान है। मैंने चोर का पता लगाने के लिए कोटिशः प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल...”

“मैं उस चोर का पता लगाने के लिए अवश्य प्रयत्न करूँगा। यदि कभी वह चोर मेरे हाथ लग गया, तो उसके प्राणों से उस पवित्र रत्नहार के अपमान का प्रतिशोध लूँगा”—युवराज ने दाँत पीसा। उन्हें वास्तव में उस चोर पर असीम क्रोध आ रहा था, जिसने उनके कुल के उस पवित्र रत्नहार का अपहरण किया था।

“उस समय तुम्हारी अवस्था केवल तीन वर्ष की थी वत्स !... आज तुम युवा हो। तब से अब तक, इतने दिवस व्यतीत हो जाने पर भी, मैं राजमहिषी को भूला नहीं हूँ—और प्रतिदिन उनकी पूजा किया करता हूँ...”

“पूजा !...” युवराज को आश्चर्य हुआ।

“हाँ ! वह देवी थी—रुष्ट होकर यहाँ से चली गई, संसार के

न जाने किस छोर में विलीन हो गईं। अब निश्चय प्रति उसकी उपासना करके ही अपने सन्तप्त हृदय को शान्ति प्रदान करने की चेष्टा करता हूँ।...देखोगे युवराज !...उनकी प्रतिमा देखोगे !...” अपनी स्नेहमयी जननी की लावण्ययुक्त देदीप्यमान सुप्रभा देखोगे !...” द्रविडराज उठ खड़े हुए—“आओ ! इधर आओ !...” युवराज उनके पास चले आये—“आओ ! आज प्रथम बार तुम भी अपने माता की स्वर्ण-प्रतिमा का दर्शन कर लो—प्रणाम कर लो उस देवी के चरण कमलों में...”

द्रविडराज ने अन्तर्प्रकोष्ठ का एक द्वार धीरे से खोला और युवराज को उसके भीतर भौंकने के लिये कहा। युवराज चकित हो गये—यह देखकर कि उस छोटी-सी कोठरी के भीतर पूजा की सामग्री, गन्ध, धूप, दीप आदि रखे हुए हैं। देव-प्रतिमा के स्थान पर एक स्वरूपवती राज-महिषी की स्वर्ण-प्रतिमा विराजमान है। वह स्वर्ण-प्रतिमा मानवी आकार की थी। उसके सम्पूर्ण शरीर से मानों जाज्वल्यमान तेजराशि प्रवाहित हो रही थी। युवराज ने घुटने टेककर, नतमस्तक हो, अपनी माता की उस स्वर्ण-प्रतिमा को प्रणाम किया। युवराज को ऐसा लगा मानों उस प्रतिमा ने अपना हाथ उनके मस्तक पर रखकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिया हो। युवराज के नेत्रों से दो अश्रुविन्दु टपक कर उस स्वर्ण प्रतिमा के समक्ष गिर पड़े।

“देखा वत्स !.....” द्रविडराज ने कहा—“यही हैं तुम्हारी माता !”—

“.....” युवराज ने सिकुट नेत्रों से अपने अभागे पिता की ओर देखा।

“यह प्रतिमा गुप्त रखी जाती है वत्स ! कोई भी नहीं जानता कि मैं मानसिक वेदना से दग्धित होता हुआ किसी प्रतिमा की आराधना किया करता हूँ। मैं लोगों पर अपनी निर्बलता प्रकट करना नहीं चाहता

वत्स !...सम्राट् का हृदय सबल होना ही चाहिये । दुःख की बौछारें एवं वेदना की अग्नि जिसे व्यथित न कर सके, वही सम्राट् है..."

"चलिये ! सन्ध्योपासना का समय सन्निकट आ गया...महापुजारी जी प्रतीक्षा करते होंगे ।" युवराज ने कहा ।

"चलो !..." द्रविडराज एवं युवराज साथ ही प्रकोष्ठ से बाहर आये । द्वारपायक ने झुककर दोनों को सम्मान प्रदर्शन किया ।

X

X

X

राजोद्यान की भूमि पर, एक सघन वृक्ष की मोटी शाखा में हिंडोला पड़ा था, जिसपर झूल रही थी किन्नरी निहारिका, अपनी अगम सौन्दर्य-राशि बिखेरती हुई । सघन-घन के आवरण ने सूर्य भगवान का समस्त तेज अपने अञ्चल में प्रच्छन्न कर रखा था । यावत् जगत पर एक अपूर्व प्रकार का उन्माद-सा छाया हुआ प्रतीत होता था, काले बादलों का नभमंडल पर नृत्य देखकर । घीमी घीमी वायु परिचालित होकर उस उन्माद की वृद्धि कर रही थी । निहारिका, प्रकृति के उस अपूर्व दृश्य से प्रभावित होकर आज हिंडोला झूल रही थी । झूलते समय उसके कुन्तलपाश वायु के प्रबल वेग से चंचल होकर उसके आरक्त कपोलों का चुम्बन करने लगते थे । कभी कभी उसके सुकोमल पैरों में पड़े हुए नूपुर मधुर स्वर में झंकृत हो उठते थे । वह आल्हादमयी होकर प्रकृति की नीरव अलहड़ता का आनन्द उपभोग कर रही थी ।

परन्तु उसके आनन्द में बाधा पहुँची । युवराज नारिकेल न जाने कहाँ से घूमते हुए वहाँ आ पहुँचे । किन्नरी ने हिंडोले पर से उतर कर उन्हें सम्मान प्रदर्शन किया । युवराज ने मधुर मुस्कान के साथ उसके अभिवादन का स्वागत किया और हिंडोले पर आ बैठे । किन्नरी उतरने लगी, परन्तु युवराज ने कहा—“कलामयी ! यहीं तुम भी बैठो”—युवराज के बहुत आग्रह करने पर निहारिका भी उसी हिंडोले पर सिमटी सी सकुचाती हुई बैठ गई ।

“आज बहुत दिनों के पश्चात् मिलन हो रहा है”—युवराज ने कहा ।

“श्री युवराज न जाने क्यों इतना रुष्ट हो गये थे, तभी तो उपासना के अतिरिक्त और किसी समय दर्शन देने की कृपा न करते थे”—निहारिका ने अपनी मधुर वाणी द्वारा अभ्रवर्षा करते हुए कहा ।

युवराज किस मुख से बताते कि महापुजारी ने उन्हें उससे एकान्त में मिलने का निषेध कर दिया है । यह बात सुनकर उस कोमल कलिका के हृदय को कितनी ठेस एवं कितनी यन्त्रणा पहुँचती—वह वर्णनातीत है ।

“श्री युवराज क्या वास्तव में रुष्ट थे ?”—पूछा उसने बीणा-विनिन्दित स्वर में ।

“नहीं तो...” युवराज ने कहा । हिंडोला पर धीरे-धीरे झूल रहा था किन्नरी का कलापूर्ण शरीर । उसके अवयव अज्ञात प्रेरणावश अचैतन्य होते जा रहे थे । युवराज अनिमेष नयनों से उस कलामयी सुन्दरी का मुखमण्डल देख रहे थे ।

“किन्नरी !...”

“देव !...”

“वह देख रही हो !...उस शाखा पर !...”

किन्नरी ने उधर देखा—तुरन्त ही दृष्टि नीची कर ली । युवराज ने वृक्ष की एक टहनी की ओर संकेत किया था, जिस पर बैठे हुए दो पक्षी आपस में प्रेम-संलाप करने में तल्लीन थे ! और वह पतली-सी डाली भी हिंडोले की भाँति झूल रही थी—मन्थर गति से । उन पक्षियों का वह कल्लोल मानो इन दोनों व्यक्तियों पर व्यंग की वर्षा कर रहा था । कितने सुखी थे वे दोनों सुदृढ़ मूक पंखी, जिन्हें संसार की कोई भी वेदना व्यथा नहीं पहुँचा सकती थी । जिनका एक अलग ही संसार बसा था, अनोखा ! किन्नरी दृष्टि नीची किये हुए बैठी थी । युवराज ने अपने कण्ठप्रदेश से बहुमूल्य मणिमाला उतारकर किन्नरी के गले में डाल दी—“यह लो, अपनी कला का पुरस्कार !”—किन्नरी ने लज्जित हो, मस्तक झुका लिया ।

मृदुल समीरण वेग से प्रवाहित हो उठा । हिंडोला झटके के साथ झूल पड़ा । उसी समय चक्रवाल की मधुर स्वर लहरी कहीं सन्निकट ही से, अलाप उठी—“प्रेम हिंडोले डोल सखीरी !—प्रेम हिंडोले डोल...”

निहारिका हिंडोले पर से उतरकर खड़ी हो गई । उसी समय उस सुरभित राजोद्यान में गाते हुए चक्रवाल ने प्रवेश किया । चक्रवाल के साथ बनराज जम्बुक भी था । चक्रवाल अभिवादन कर युवराज के समक्ष आकर खड़ा हो गया ।

“श्रीयुवराज !...” चक्रवाल ने कुछ कहना चाहा ।

“कहो ।...”

“महापुजारी जी को अभी अभी यह मालूम हुआ है कि आप किन्नरी के साथ राजोद्यान में हैं । वे इधर ही आ रहे हैं । आप शीघ्र यहाँ से हमारे साथ चल चलें...” चक्रवाल उतावली के साथ बोला । युवराज उठ खड़े हुए और शीघ्रता पूर्वक चक्रवाल के साथ राजोद्यान से बाहर की ओर चल पड़े । किन्नरी ने जाते हुए युवराज को अभिवादन किया । अब राजोद्यान में केवल किन्नरी और जम्बुक रह गये । दोनों राजोद्यान में इतस्ततः घूमकर मनोरंजन करने लगे । एकाएक किन्नरी के पैर में एक तीक्ष्ण काँटा चुभ गया । किन्नरी एक आह कर भूमि पर बैठ गई । जम्बुक लपक कर उसका काँटा निकालने लगा । उसी समय चरण-पादुका की ध्वनि सुनाई पड़ी और उद्दीप्त भंगिमा लिये हुए महापुजारी ने वहाँ पदार्पण किया । किन्नरी एवं जम्बुक ने महापुजारी के चरण छुए । मनुष्य की देखा-देखी, वह बनमानुष भी बहुत से मानवी स्वभाव सीख गया था ।

महापुजारी की तीव्र दृष्टि किन्नरी के मुख पर पड़ी—“श्री युवराज यहाँ आये थे ?”—उन्होंने कर्कश स्वर में पूछा । किन्नरी का सारा शरीर भय से सिहर उठा, परन्तु जम्बुक ने तुरन्त ही अपना भयानक सर हिलाकर यह प्रकट किया कि युवराज वहाँ पर नहीं आये थे ।

महापुजारी ने ऐसी भंगिमा प्रदर्शित की, मानों उन्हें उस बात पर विश्वास न हुआ हो—“तुम बोलो निहारिका ! श्री युवराज यहाँ आये थे या नहीं !...” परन्तु निहारिका के कुछ कहने के पहले ही, महापुजारी की दृष्टि निहारिका के कोमल कंठ में पड़ी हुई, युवराज की दी हुई मणिमाला पर जा पड़ी। उनके नेत्र प्रज्ज्वलित हो उठे—“—हूँ !...” उन्होंने विकट रूप से हुँकार भरा—“तो श्रीयुवराज यहाँ अवश्य आये थे—तुम्हारे कंठ में पड़ी हुई मणिमाला इसकी साक्षी है।”

किन्नरी के पैरों-तले से पृथ्वी जैसे खिसकती-सी मालूम पड़ी। अभी तक उसने उस मणिमाला पर तनिक भी ध्यान न दिया था और न तो उसे छिपाने का ही कोई प्रयत्न किया था। तनिक-सी भूल ने अनर्थ कर डाला।

बिना एक शब्द बोले हुए महापुजारी घूम पड़े और क्रोधपूर्ण भंगिमा से राजोद्यान के बाहर हो गये। किन्नरी का हृदय घटकने लगा। उसने जम्बुक से कहा—“जम्बुक ! तुम जाओ और देखो महापुजारी कहाँ जाते हैं। कोई बात हो तो युवराज एवं चक्रवाल को सूचित कर देना...”

×

×

×

×

महापुजारी को तीव्रवेग से आते हुए देखकर द्वारपायक एक बगल हटकर खड़ा हो गया और झुककर उसने महापुजारी की चरणधूलि मस्तक से लगाई।

“श्रीसम्राट् से कहो कि महापुजारी इसी समय उनसे मिलने को उत्सुक हैं। कार्य अत्यन्त आवश्यक है....” महापुजारी ने उतावली के साथ कहा। द्वारपायक भीतर चला गया, दो क्षण पश्चात् लौटकर बोला—“जा सकते हैं...”

द्रविडराज आज भी उन्हीं कष्टदायी विचारों में तल्लीन थे। उनके नेत्रों में दुखातिरेक से आज भी अश्रुकण विद्यमान थे। परन्तु द्वारपायक

से यह सुनकर कि महापुजारी उनसे इसी समय मिलने को उत्सुक हैं उन्होंने अपने नेत्र पोंछ लिये—अपनी भंगिमा ठीक कर ली ।

महापुजारी आये । सम्राट् ने उनकी चरणधूलि मस्तक से लगाई महापुजारी गरज उठे—“श्रीसम्राट् !....” देख रहा हूँ कि जो कर्म द्रविडकुल के इतिहास में नहीं हुआ, वही अब होने जा रहा है । जिर बात की आशंका मेरे हृदय में बहुत पूर्व से ही विराजमान थी, वह आज विश्वास में परिणत हो गई....”

“.....” द्रविडराज निस्तब्ध रहे ।

“श्रीयुवराज के कार्यों की ओर मैं आप का ध्यान आकर्षित करने चाहता हूँ श्रीसम्राट् !...” महापुजारी बोले—“वे किन्नरी निहारिक के अत्यधिक सम्पर्क में आ गये हैं । एक दिन मैंने उनको सावधान कर दिया था, मगर...”

“क्या नारिकेल के विषय में आपको यह धारणा है महापुजारी जी ?”—सम्राट् आश्चर्यचकित हो उठे ।

“हाँ श्री सम्राट् !...”

“महामाया करें, यह धारणा असत्य हो महापुजारी जी !...नारिकेल सबिल जैसा निर्मल एवं चन्द्रिका जैसा धवल है...”

“श्रीसम्राट् !...” तीव्र स्वर में बरस पड़े महापुजारी—“यौवन का आवेग है । यह न भूल जाइये कि इस अवस्था में प्रलयंकर कार्य असम्भव नहीं ।”

“जमा !...मुझे क्षमा करें महापुजारी जी ! मैं अभी नारिकेल को बुलाकर पूछता हूँ”—

“उन्होंने अपनी मणिमाला प्रदान की है उसे !”

“मणिमाला ?”—सम्राट् का स्वर उत्तेजित हो उठा—“उसने मणिमाला प्रदान की है ! वह अपनी वंश-मर्यादा विस्मृत कर बैठा है ! अपने धवल वंश पर कलंक-कालिमा लगाना चाहता है वह !...”

क्रोडित द्रविडराज आगे बढ़कर द्वार के सन्निकट चले आये—
“पायक !....” उन्होंने पुकारा ।

“आज्ञा श्रीसम्राट् !...” द्वारपायक ने सम्राट् को अभिवादन किया ।

“युवराज को बुलाओ—अभी !....”

×

×

×

“जी हों अभी अभी महापुजारी जी सीधे श्रीसम्राट् के पास गये हैं । मुझे ठीक पता है...अब क्या होगा !...” चक्रवाल ने सशंकित स्वर में कहा । युवराज के मस्तक पर चिन्ता की रेखायें खिच आईं—
“किन्नरी कहती थी कि महापुजारी जी ने आपकी प्रदान की हुई मणि-माला उसके कंठ-प्रदेश में देख ली है...” चक्रवाल बोला ।

“मणिमाला देख ली है !...” युवराज काँप उठे—“क्या कला की उपासना करना इतना बड़ा अपराध है ! क्या सौंदर्योपासना में सदैव वासना ही अन्तर्हित रहती है !....”

“इस जगत के अधम प्राणी यह सब नहीं समझ सकते श्री-युवराज !”

“अधम प्राणी !—यह किसे कह रहे हो तुम चक्रवाल !...पिता जी को या महापुजारी जी को !...सावधान ! फिर कभी ऐसे वाक्य मुख से न निकालना । पिता जी मेरे पूज्य हैं, महापुजारी जी गुरुदेव हैं—भला वे लोग कभी हमारे अहित की कामना कर सकते हैं !...”

“श्री युवराज मुझे क्षमा प्रदान करें—वह देखिये ! श्रीसम्राट् का द्वारपायक इधर ही आ रहा है...”

द्वारपायक ने आकर युवराज को अभिवादन किया, और बोला—
“श्रीसम्राट् आपको इसी समय स्मरण कर रहे हैं । आप मेरे साथ ही चलने की कृपा करें...”

“चलो !...तुम घबड़ाओ नहीं चक्रवाल ! मैं पिताजी से सब स्पष्ट कह दूँगा”—

युवराज ने ज्योंही द्रविडराज के प्रकोष्ठ में प्रवेश किया, उनका सारा क्रोध विलीन हो गया, युवराज की सहज प्रतिभा से प्रोद्भासित निष्कलंक मुखाकृति का अवलोकन कर । युवराज ने आगे बढ़कर महापुजारी एवं द्रविडराज के चरण छुए ।

“वत्स ! महापुजारी जी का कथन है कि तुम्हारे कार्यों से द्रविडकुल की उज्ज्वल मर्यादा विनष्ट होना चाहती है...” द्रविडराज ने स्थिर-दृष्टि से युवराज के नेत्रों में देखते हुए कहा ।

“यदि मेरा कोई आचरण महापुजारी जी को निकृष्ट प्रतीत हुआ हो, तो मैं महापुजारीजी से क्षमा माँगता हूँ”—युवराज ने संयत वाणी में कहा ।

“आप की मणिमाला कहाँ है श्रीयुवराज ?”—महापुजारी ने पूछा ।

द्रविडराज काँप उठे—यह सोचकर कि यदि कहीं युवराज ने मणिमाला के विषय में असत्य सम्भाषण कर दिया, तो उन्हें युवराज को भी उसी प्रकार न्यायदंड देना पड़ेगा, जिस प्रकार उन्होंने राजमहिषी त्रिधारा को दिया था । द्रविडराज तीक्ष्ण दृष्टि से युवराज की ओर देखते रहे । उनका हृदय तीव्र वेग से स्पन्दित हो रहा था ।

“मैंने उसे किन्नरी निहारिका को प्रदान कर दिया”—युवराज की गम्भीर वाणी गूँज उठी, साथ ही द्रविडराज प्रसन्नता से अल्हादित हो उठे, युवराज की सत्यता पर ।

“क्यों ?...मणिमाला किन्नरी को प्रदान करने का कारण ?...” महापुजारी ने पूछा ।

“उसकी सर्वतोन्मुखी कला, जिसे अवलोकन कर सहज ही हृदय में प्रगाढ़ भक्ति का संचार हो जाता है...”

महापुजारी की क्रोधपूर्ण मुखमुद्रा गम्भीर हो चली । युवराज की बातों में उन्हें कदाचित् कलुषता का आभास न मिल सका । कई क्षण तक प्रकोष्ठ में नीरवता का साम्राज्य छाया रहा ।

“जाओ !...फिर कभी किन्नरी से मिलने का प्रयास न करना” —द्रविड़राज ने कहा । महापुजारी एवं सम्राट के चरण छूकर युवराज अपने प्रकोष्ठ की ओर चले गये ।

तब से युवराज ने फिर कभी किन्नरी से मिलने का प्रयास न किया । यद्यपि दारुण ज्वाला उनके हृदय में धधकती रहती थी, तथापि अपने गुरुजनों के अभीष्ट मार्ग पर चलना ही तो उनका परम कर्त्तव्य था । युवराज का हृदय रह रहकर किन्नरी से मिलने के लिए व्यग्र हो उठता था । अहर्निश किन्नरी का कला पूर्ण शरीर उनके नेत्रों के समक्ष नृत्य करता रहता था । कभी कभी सुषुप्तावस्था में वे चिल्ला उठते थे— “किन्नरी ! कलामयी ! आओ न...!”

किन्नरी को कम दुःख न था । वह तो अबला थी । युवराज के विछोह से वह अत्यन्त व्यथित थी । केवल उपासना के समय राजमन्दिर में दोनों का मिलन होता—परन्तु गुरुजनों के भय से कोई भी एक दूसरे से न बोलता । जब किन्नरी अपने प्रकोष्ठ में अकेली बैठी रहती, तो युवराज का स्मरणकर उसका कलेजा मुख को आ जाता । वह फूट फूटकर रो उठती ।

एक दिन, जब कि वह अपने प्रकोष्ठ में बैठकर अश्रुवर्षा कर रही थी अपने सन्तप्त नयनों से—तो चक्रवाल उसके पास आया । उसके नेत्रों में अश्रुकण देखकर चक्रवाल का दयार्द्र हृदय विचलित हो उठा । उसने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा— “क्यों रोती हो किन्नरी !... कोई फूट फूटकर रोता है, अपने फूटे भाग्य पर !....”

“चक्रवाल !...” किन्नरी सिसकते हुये बोली—“तुम्हारे युवराज मुझसे रुष्ट हैं क्या !...”

“मेरे युवराज !...और तुम्हारे नहीं !....भला वे कभी रुष्ट हो सकते हैं तुमसे ! जिम प्रतिमा की वे आराधना करते हैं, उससे भला वे रुष्ट होंगे !...वे भी तुमसे कम मन्तप्त नहीं हैं किन्नरी ! सूखकर आधे हो गये हैं...” चक्रवाल ने किन्नरी को सान्त्वना दी—“धर्य

रखो ! हमारा जीवन दुःखों का आगार है । हम यातना सहन करने के लिए ही इस असार संसार में आये हैं... इसमें दोष किसका ! उन्हें भूल जाओ ! वे युवराज हैं—जम्बूद्वीप के भावी अधीश्वर हैं—वे हमारे नहीं हो सकते—नहीं हो सकते किन्नरी !...” चक्रवाल ने दूसरी ओर मुख फेर लिया । कदाचित् उस अगम कलाकार के नेत्रों में भी अश्रुक्षण उमड़ पड़े थे—अपनी कला सहचरी की असीम वेदना देखकर ।

X

X

X

X

अर्द्ध रात्रि की भयानक नीरवता समग्र संसार को आच्छादित किये थी । आकाश-मार्ग पर प्रदीप्त कुछ तारिकायें सुषुप्त संसार की ओर अनिमेष दृष्टि से देख रही थी । वायु निश्चल था एवं प्रकृति निस्तब्ध ।

चक्रवाल के नेत्रों में अब तक निद्रा के कोई लक्षण नहीं थे । वह अपने प्रकोष्ठ में, छोटी-सी खिड़की के पास बैठा हुआ, आलोकित तारिकाओं की ओर मुग्ध दृष्टि से देख रहा था । उसके करों में थी उसकी वीणा और वीणा के तारों पर थी उसकी मजी हुई अँगुलियाँ । निस्तब्धता को प्रकम्पित करती हुई वीणा की ध्वनि क्षितिज के पास तक पहुँच रही थी । साथ ही चक्रवाल के मुख से निकलो हुई रागिनी—रस बरसे, रस बरसे....मानों जड़ को चैतन्य एवं चैतन्य को जड़ बना रही थी । वह अपनी रागिनी में तन्मय था । उसे क्या ज्ञात था कि इस समय भी, जब कि यावत् संसार सुखद निद्राभूत है, दो प्राणी उसके गायन से अत्यन्त व्यथित हो रहे हैं । किन्नरी निहारिका, अपने प्रकोष्ठ में बैठी हुई, चक्रवाल के गायन की विकल रागिनी सुन रही थी । उसके नेत्रों से अश्रुक्षण प्रवाहित हो रहे थे ।

समग्र संसार रजत प्रकाश धारा में स्नान करता हुआ, उस अगम कलाकार की कला में तन्मय था । चक्रवाल भी तन्मय था, केवल उसकी विकल स्वर-रागिनी अलाप रही थी—“रस बरसे, रस बरसे...” वास्तव में उस समय चारु-चन्द्रिका सुधारस की वर्षा कर रही थी ।

एकाएक चक्रवाल के बन्द द्वारदेश पर बाहर से किसी ने थपकी

दी। कलाकार की प्रेरणा में बाधा पहुँची। उसने अपनी वीणा रख दी, और द्वार की अर्गली खोल दी—“किन्नरी तुम !...” एकाएक चक्रवाल के मुख से आश्चर्यजनक स्वर निकल पड़ा—निस्तब्ध अर्द्ध-रात्रि में अपने द्वार पर आलुलायित केश-विद्धिस्त किन्नरी निहारिका को खड़े देखकर।

किन्नरी चक्रवाल के प्रकोष्ठ में चली आई और भीतर से पुनः कपाट बन्द कर लिया। चक्रवाल ने देखा किन्नरी की भंगिमा भ्लान-युक्त है, उसके नेत्रों में जलविन्दु विद्यमान थे। उसका समस्त सौन्दर्य अस्तव्यस्त हो रहा था—“चक्रवाल !...” किन्नरी ने रुदित स्वर में पुकारा।

“इस समय यहाँ आने का कारण ?”—

“अर्ध रात्रि के समय में भी तुम्हारी कला का श्रोत प्रवाहित है !—कभी रुकेगा या नहीं !...या मुझे रुलाने में ही तुम्हें आनन्द प्राप्त होता है”—किन्नरी वास्तव में मिसक रही थी।

“तुम्हें वेदना होती है निहारिका !”

“मुझे !...देखो ! समग्र संसार वेदनासन्न है—पल्लव रुदन कर रहे हैं, चन्द्रिका ओस की वर्षा करती हुई अपनी व्यथा प्रकट कर रही है...तुम क्यों ऐसा गाते हो चक्रवाल ! किसी को व्यथित करने से, रुलाने से, तुम्हें मिलता क्या है !....”

“तुम समझती हो कि तुम रुदन करती हो, तो मैं हँसता हूँ !... किन्नरी ! वेदना का प्रखरतर प्रतिरूप मेरे हृदय में भी विद्यमान है। सब कुछ खोकर बैठा हूँ—अब इन गानों का ही तो सहारा है। तुम इन्हें भी मुझसे छीन लेना चाहती हो !...”

निहारिका को आश्चर्य हुआ। उसने चक्रवाल के मुख की ओर दृष्टि-पात किया। वह चौंक पड़ी—चक्रवाल के नयनकोटरों में वेदना के प्रति-रूप अश्रुविन्दु देखकर। चक्रवाल बोला—“तुम्हें व्यथा पहुँचती है, बोलो—मैं नहीं गाऊँगा”—

“गाओ ! अवश्य गाओ !...” निहारिका ने कहा—“—ऐसी विकल रागिनी की वर्षा करो कि बड़ चेतन सभी हाहाकारमयी व्यथा से रुदन करने लगें.....गाओ चक्रवाल !....”

चक्रवाल ने अपनी वीणा उठाई। वीणा की झंकार एवं चक्रवाल के दुःखित स्वर का प्रकम्पन मिलकर गुञ्जरित हो उठा—

“रस बरसे, रस बरसे।

अपनी प्यास छिपाये मन में, क्यों तरसे क्यों तरसे ।।”

उसके गायन में पुनः बाधा पहुँची। किसी ने पुनः उसके बन्द द्वार पर थपकी दी। चक्रवाल चौंक पड़ा—किन्नरी काँप उठी—“महा-पुजारी जी आये हैं—अवश्य उन्हें पता लग गया कि हम मेरे प्रकोष्ठ में हो....अब !...” चक्रवाल ने धीमे स्वर में कहा। उसका हृदय घड़क रहा था—किन्नरी को अर्द्धरात्रि के समय उसके प्रकोष्ठ में देखकर महा-पुजारी न जाने क्या समझेंगे ?

द्वार पर पुनः थपकी सुनाई पड़ी। किन्नरी व्यग्रतापूर्वक बोली—“तुम बताओ चक्रवाल ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? यदि महापुजारी जी मुझे यहाँ देख लेंगे, तो पीसकर पी जायेंगे—तुम्हें भी कुछ बुरा भला कहे बिना न रहेंगे”—

“क्या करूँ ?...” चक्रवाल हाथ मल रहा था।

“एक भूल के कारण युवराज से बिछुड़ गई—आज दूसरी भूल के कारण तुमसे भी बिछुड़ जाना चाहती हूँ चक्रवाल ! कोई मार्ग निर्धारित करो— मुझे महापुजारी की क्रूर दृष्टि से बचाओ...चक्रवाल !”—किन्नरी अत्यधिक भयभीत हो उठी थी।

तीसरी बार द्वार पर कुछ वेग के साथ थपकी सुन पड़ी। चक्रवाल बोला—“अब मुझे द्वार खोलना चाहिये....किन्नरी ! तुम पलंग के बिछावन पर लेट जाओ। मैं तुम्हें इसी में छिपा दूँ। दूसरा कोई मार्ग नहीं...अब जो कुछ होगा, देखा जायगा...बल्दी करो !...”

किन्नरी बिछावन पर लेट गई। चक्रवाल ने उसके समेत बिछावन

को लपेट कर पलंग के पायताने रख दिया, और आगे बढ़कर घड़कते हृदय से द्वार खोला। मगर वह मानों आकाश से गिरा, यह अवलोकन कर कि द्वारदेश पर महापुजारी की उग्रमूर्ति नहीं, वरन् युवराज की सौम्य एवं शान्त प्रतिमा खड़ी है—कालिमाञ्छन्न मुखमण्डल लिये हुए। चक्रवाल ने युवराज को मस्तक झुकाकर सम्मान प्रदर्शन किया, पुनः बोला—“पधारिये श्रीयुवराज !...”

युवराज आकर उसी पलंग पर, उसी बिछावन से उठंग कर बैठ गये। बिछावन के भीतर छिपी हुई किन्नरी निहारिका का मृदुल शरीर अनिर्वचनीय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा—“श्री युवराज के असमय पदार्पण का कारण !”—पूछा चक्रवाल ने।

युवराज के हृदय में जो अगम वेदना अन्तर्हित थी, उसे शब्दों में व्यक्त कर सकने की शक्ति किसमें थी ? फिर भी वे बोले—“नीरव रत्ननी को प्रकम्पित कर अबाध गति से प्रवाहित तुम्हारा गावन-स्वर सुन कर मेरी निद्रा टूट गई। मुझे जो व्यथा हुई वह वर्णनातीत है...”

“मैं श्रीयुवराज से इसके लिये क्षमा प्रार्थी हूँ”—

“तुम ऐसे हृदय-विदारक गीत क्यों गाते हो चक्रवाल !”

“.....” चक्रवाल चुप रहा। किन्नरी के हृदय का स्पंदन तीव्र हो गया।

“व्यथित-हृदयों के साथ परिहास करना तुमने भी सीखा है !...”

“यह परिहास है !...नहीं श्रीयुवराज ! यह मेरे हृदय की अगम व्यथा है, जो गायन के शब्दों में...”

“तुम अपनी व्यथा सुना सुनाकर सभी को व्यथित करना चाहते हो !...चक्रवाल ! अब ऐसे गायन न गाया करो—मुझे महान् दुःख होता है...”

“किन्नरी से आप रुष्ट क्यों हैं श्रीयुवराज !...”

“ओह ! उस कलामयी सुन्दरी का स्मरण न दिलाओ चक्रवाल ! वह देवी है—उसकी उपासना मेरे लिये दुर्लभ है...”

“वह आपके लिये अत्यन्त व्यग्र रहती है...”

“व्यग्र रहती है !...वह अनुपम कला की प्रतिमा मुझ निकृष्ट मानव के लिये व्यग्र रहती है !...वह तो कलामयी है चक्रवाल ! वह क्यों मेरे लिये व्यथित होगी !”—युवराज ने कहा । चन्द्रदेव की एक प्रकाश-रेखा खिड़की की राह आकर उस लिपटे हुए बिछावन पर नृत्य कर रही थी । युवराज ने उस ओर देखा । वे चौंक पड़े—उस निर्जीव बिछावन में कुछ प्रकम्पन देखकर ।

“यह क्या है चक्रवाल !...इस बिछावन में है क्या !....” युवराज ने पूछा ।

“कुछ तो नहीं श्रीयुवराज !”—चक्रवाल ने कहा—परन्तु उसका हृदय तीव्र वेग से हास्य करना चाहता था ।

“मैं इसे देखना चाहता हूँ”—कहते हुए युवराज ने बिछावन उलट दिया । किन्नरी की सौन्दर्य-राशि आलोकित हो उठी । युवराज आश्चर्य चकित हो गये—अपने हृदयदेवी को इस प्रकार वहाँ उपस्थित देखकर ।

“किन्नरी !...कलामयी !...” युवराज का हृदय उमड़ पड़ा ।

“देव !...” वह सिसक उठी जोरों से ।

युवराज ने आगे बढ़कर उसका कोमल कर पकड़ लिया । दोनों के नेत्र सिक्त हो रहे थे । दोनों के नेत्रों से एक साथ ही दो बूँद आँसू भूमि पर एक ही स्थान पर टपक पड़े । उन दोनों अश्रु—विन्दुओं का वह मधुमय मिलन अतीव करुणापूर्ण एवं हृदयद्रावक था ।



जम्बूद्वीप के उत्तर में अवस्थित गिरिराज हिमांचल अभेद्य एवं दुरुह है। हिमाच्छादित गगनचुम्बी शिखर एवं भयानक कंटकाकीर्ण बन से ढँकी हुई चोटियों से यह असम्भव है कि कोई मध्य अशान्त महाद्वीप से इस ओर आ जाय। मगर प्रकृति ने मार्ग बना ही दिया है—वह मार्ग है खट्वांग की घाटी। यद्यपि यह घाटी भी समतल एवं अकंटक नहीं है—फिर भी साहसी मनुष्य के लिए इस मार्ग द्वारा उस पार से इस पार चला आना असम्भव नहीं।

इसी घाटी द्वारा आर्य सम्राट् तिग्मांशु की विशाल सेना ने उस पार से इस पार की शस्यश्यामला भूमि में पदार्पण किया। घाटी के समीप ही सेना ने डेरा डाल दिया। सहस्रों शिविर पड़ गये, मानों एक नगर ही बस गया उस भयानक बनस्थली के भ्वाङ में।

इस समय सन्ध्या की कालिमा क्रमशः अपना अंचल प्रसारित कर रही थी। एक बड़े-से शिविर में बैठे हुए आर्य सम्राट् तिग्मांशु अपने कुछ वीर योद्धाओं के साथ कोई गुप्त मन्त्रणा करने में तल्लीन थे, वर्यो कि उन्हें अभी अभी ही समाचार मिला था कि किरातों की एक टुकड़ी आकर उनका मार्ग रोकने के लिए, वहाँ से केवल अर्द्धयोजन की दूरी पर अपना डेरा डाले पड़ी है।

“गुप्तचर ! तुम्हारा कहना है कि किरातों की सेना बहुत छोटी है—यही न !...” आर्य सम्राट् ने पूछा।

“जी श्रीमान् ! यही कोई चार पाँच सौ होंगे...मगर जो भी हैं, सभी वीर योद्धा हैं—दश को मारकर तब मरने वाले हैं....और उनका नायक !...उसकी न पूछिये ! मैंने देखा तो नहीं, गुप्त रीति से सुना है कि वह अभी बालक है, लेकिन आर्य सेना का कदाचित ही कोई वीर उसके समक्ष ठहर सके...” दूत ने नतमस्तक होकर कहा।

“ऐसा है !...”

“जी हॉ ! किरात सेना उसकी आज्ञा पर अपना प्राण दे सकती है... यदि हम प्रयत्न करके इस टुकड़ी को अपनी ओर मिला सकें, तो हमारी शक्ति बहुत बढ़ जायगी—साथ ही हमें मार्ग प्रदर्शन में अतीव सहायता मिलेगी”—

“ऐसा हो जाय तो उत्कृष्ट है...” आर्य सम्राट् कुछ विचार करने लगे—“मैं छद्मवेश में इसी समय तुम्हारे साथ चढ़ूँगा। अश्व प्रस्तुत करो...”

वह गुप्तचर और स्वयं आर्य सम्राट् तिग्मांशु अश्व पर आरूढ़ होकर भयंकर जंगल में परिभ्रमण करते हुए निर्धारित दिशा की ओर चल पड़े। बहुत दूर चले जाने पर एक स्थान पर गुप्तचर ने अपना अश्व रोका। दोनों उतर पड़े—“वह देखिये ! वही वृक्ष के नीचे पड़ी है किरातों की टुकड़ी।” गुप्तचर ने कहा। दोनों पैदल ही उस ओर बढ़े।

अन्धकार पूर्ण रात्रि थी। मार्ग कंटकाकीर्ण एवं दुरूह था। बहुत बचा बचाकर दबे पाँव वे लोग चल रहे थे। कुछ दूर चले आने पर सम्राट चौंक कर खड़े हो गये। उनके कान के पास से ही कोई सरसराती हुई वस्तु तीव्र वेग से निकल गई थी—“अवश्य यहाँ पर कोई शत्रु उपस्थित है—उसी ने हम पर तीर चलाया है। गुप्तचर ! लेट जाओ भूमि पर, शब्द न हो।”—सम्राट ने कहा। दोनों भूमि पर लेटकर इधर उधर की आइट लेने लगे, मगर फिर कोई शब्द न सुनाई पड़ा और न किसी की आकृति ही दिखाई दी।

धीरे धीरे आर्य सम्राट और गुप्तचर उठे और अतीव सावधानता से आगे की ओर बढ़ने लगे। परन्तु चार पग आगे बढ़ते ही पुनः एक तीर सराता हुआ, सम्राट की दक्षिण भुजा में एक साधारण खँरोच देता हुआ, निकल गया। सिहर कर सम्राट एवं गुप्तचर पास के एक दीर्घाकार वृक्ष की ओट में खड़े हो गये और आँखें फाड़ फाड़कर चारों ओर के घनीभूत अन्धकार में अपने शत्रु की खोज करने लगे। परन्तु

ऐसा मादूम होता था कि उस बनस्थली के कोने कोने में भयानक पिशाच परिभ्रमण कर रहे हों, और उन्हीं का यह कार्य हो।

सम्राट एवं गुप्तचर नीरव होकर खड़े थे उस वृक्ष की ओट में। एकाएक उनके ठीक पीछे से एक कठोर गर्जन सुनाई पड़ा—“सावधान ! जहाँ हो, वहीं खड़े रहो”—सम्राट् एवं गुप्तचर आश्चर्यातिरेक से घूम पड़े। देखा—ठीक उनके पीछे खड़ा था धनुर्धारी एक किरात युवक जिसके कार्मुक पर चढ़े हुए दो तीर इन दोनों के बक्ष की सीध में तने थे। सम्राट् ने दाँत पीसा और तुरन्त ही उनके हाथ कृपाण की मूँठ पर पर जा पड़े।

“व्यर्थ है !...” वह किरात युवक बोला—“यह सब व्यर्थ है। इस समय सारा बन्धप्रदेश किरातों से भरा पड़ा है। आपके नेत्रों से हमारे नेत्र अधिक देखनेवाले हैं। अच्छा हो—आप लोग सीधे हमारे नायक के पास चले चलें...”

सम्राट तिग्मांशु आश्चर्यचकित रह गये, उस वीर किरात युवक की बातें सुनकर। जहाँ का एक साधारण युवक इतना शौर्यवान है, तो उसका नायक कैसा होगा ?—वे सोचने लगे।

किरातयुवक ने अपना कार्मुक कंधे से लटका लिया और आगे आगे चल पड़ा। सम्राट और गुप्तचर ने उसका अनुसरण किया। उस स्थान पर जहाँ वृक्षों के नीचे किरात-सेना पड़ी थी, वह किरात युवक आकर एक ऊँची शिलाखंड पर बैठ गया। उस युवक के साथ दो अपरिचितों को आते देखकर समग्र किरातयुवक उस स्थल पर आ रहे।

“आप लोग कौन हैं !...” पूछा उस युवक ने।

“अपने नायक को बुलाओ। मुझे उससे आवश्यकीय बातें करनी हैं...” सम्राट् ने कहा।

“नायक तो यही हैं”—किरात समुदाय में से किसी ने कहा।

“यही हैं !”—चौककर आर्य सम्राट् ने उस युवक की ओर देखा, जो इस समय शिलाखंड पर बैठा हुआ मन्द मन्द मुस्कुरा रहा था।

उसके कंठप्रदेश में एक मूल्यवान रत्नहार उपस्थित है, जिसकी मणियों से मन्द मन्द प्रकाश निकल रहा है। आर्य सम्राट को महान् आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि ऐसा मूल्यवान रत्नहार कदाचित् उनके राज्यकोष में भी नहीं है।

“मैं आर्य सम्राट् तिग्मांशु हूँ—तुम्हारे पास एक अत्यावश्यकोप कार्य से आया हूँ”—

“आर्य सम्राट् तिग्मांशु !...” पर्णिक ने स्थिर वाणी से दुहराया, तत्पश्चात् उन्हें उचित आसन पर बैठाकर बोला—“आपके यहाँ आने का तात्पर्य ?”

“इसके प्रथम कि मैं कुछ कहूँ—मैं यह पूछना चाहता हूँ वीर युवक ! कि तुम्हारे यहाँ आने का कारण क्या है ?”

“आपके मार्ग में बाधा उपस्थित कर आपको अग्रसर होने से रोकें—यही हमारे यहाँ आने का कारण है”—पर्णिक ने निर्भीक भाव से उत्तर दिया।

“तुम मुझे अग्रसर होने से क्यों रोकना चाहते हो !”—

“क्योंकि स्वदेश की रक्षा का भार प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर समान रूप में है !”

“परन्तु मैं तो इस देश में मित्रता बढ़ाने आया हूँ...”

“परन्तु आर्य सम्राट् ! मित्रता बढ़ाने के लिये साथ में इतनी विशाल सेना की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्या आप बल प्रयोग कर मित्रता बढ़ाना चाहते हैं !...”

“नायक !...” आर्य सम्राट् मुस्कुरा उठे—“मैं तुम्हारे बुद्धिचातुर्य की प्रशंसा करता हूँ। धन्य है तुम्हारी माता, जिसने तुम्हें जन्म दिया...”

“आप धन्य हैं श्रीमान् !...अपनी माता की प्रशंसा करनेवाले को मैं आदर की दृष्टि से देखता हूँ”—पर्णिक ने कहा।

“देखो नायक !...” सम्राट् गम्भीर वाणी में बोले—“हमारा

आर्यधर्म संसार में सर्वोच्च है। हम लोग उसके कट्टर अनुयायी हैं ! उसी धर्म का प्रसार करने हम निकले हैं...हमारे यहाँ आने के मुख्य दो कारण हैं, प्रथम तो यह कि हमें रहने के लिये मध्य अशान्त महाद्वीप में स्थान का बहुत अभाव हो गया है, अतः हम यहाँ अपने कुछ मनुष्यों को बसाना चाहते हैं। इस देश से अच्छा निकटतम कोई देश नहीं है, कि हम वहाँ जाकर बस सकें—इसीलिये हम यहाँ आये हैं। दूसरा कारण यह है कि यहाँ हम लोग अपनी सभ्यता का प्रसार करना चाहते हैं...”

“परन्तु अपना धर्म एवं अपनी संस्कृति त्यागकर आपका अबलम्बन कौन करना चाहेगा श्रीमान् !”—पूछा पर्णिक ने।

“तुम अन्धकार में हो नायक !...एक अच्छी संस्कृति का अनुयायी होना मनुष्यमात्र का परम कर्त्तव्य है ”—

“अगर कोई इसके लिये प्रस्तुत न हो, तो !...”

“तो इसके लिए बल प्रयोग करना मैं राजनीति का एक अंग समझता हूँ।”—

“आपको जानना चाहिए श्रीमान् ! कि पर्णिक की माता ने उसे मरना सिखाया है, जीना नहीं—” पर्णिक ने गर्व से कहा।

“धन्य है तुम्हारी माता !”—आर्य सम्राट् के मुख से पुनः अपनी माता की प्रशंसा सुनकर पर्णिक की श्रद्धा आर्य सम्राट् पर बढ़ गई।

“मगर श्रीमान् ! हम स्वदेश रक्षा करने निकले हैं !....”

“तुम्हारी स्वदेश-भक्ति धन्य है वीर युवक !...मगर मैं तुम्हारे स्वदेश का अहित-चिन्तक नहीं हूँ। मैं अपने रहने के लिए कुछ भूमि चाहता हूँ और चाहता हूँ अपने उत्कृष्ट धर्म का प्रचार। जब तक यह कार्य नम्रता-पूर्वक पूर्ण हो जाय-तब तक बल प्रयोग करना मैं नीचता समझता हूँ...”

“.....” पर्णिक निस्तब्ध रहकर आर्य सम्राट को बातों पर विचार करता रहा।

“मैं इस हेतु तुम्हारे पास आया हूँ नायक !...मैं अपने कार्य में तुम्हारी सहायता चाहता हूँ—तुम्हें अपनी सेना में मिलाना चाहता हूँ । तुम्हारे सम्मिलित होने से हमारी शक्ति द्विगुणित हो जायगी...यों तो मैं बल प्रयोग भी कर सकता था, मगर तुम्हारी सहायता एवं सहज लावण्य से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ...”

“परन्तु मैं आपकी आज्ञा अस्वीकार करता हूँ श्रीमान्...”

“इसका कारण क्या है नायक !...इधर देखो ! आर्य सम्राट् तिग्मांशु तुम्हारे पास आकर एक तनिक-सी भिक्षा माँग रहे हैं, और तुम अस्वीकार कर रहे हो !....क्या तुम्हारी माता ने तुम्हें यही शिक्षा दी है कि अपने पास आये हुए अतिथि की प्रार्थना पैरों से ठुकरा दो ! क्या तुम्हारी माता ने तुम्हें यही सिखाया है कि तुम अपने पास सहायता के लिए आये हुए व्यक्ति का अपमान एवं तिरस्कार करो !...”

“.....” पण्डित आपाद-मस्तक काँप उठा ।

“क्या तुम्हारी पूजनीया माता ने तुम्हें यही आदेश दिया है कि तुम स्वदेश रक्षा के अभिमान में आकर सुदूर से आये हुए एक व्यक्ति का प्रखरतर निरादर करो । नायक ! यह तुम्हारा घर है, यहाँ तुम्हें सभी सुविधायें प्राप्त हैं—हैं न !....”

“.....” पण्डित ने मस्तक हिलाया ।

“हम विदेशी हैं । नाना प्रकार के कष्ट भेलते हुए हम यहाँ तक तुम्हारे देश में, तुम्हारे पास तक आये हैं—और तुम हमें ठुकरा रहे हो । क्या यही तुम्हारी माता के उपदेश का आदर्श है !...”

“.....” पण्डित धर्म संकट में पड़ गया था । अपनी माता के उपदेश पर आक्षेप, वह सहन नहीं कर सकता था, फिर भी वह निस्तब्ध था—आर्य सम्राट की बातें सुनकर ।

“बोलो, तुम्हारा क्या विचार है ?”—पूछा आर्य सम्राट् ने ।

“मैं आपका साथ दे सकता हूँ...”

“दे सकते हो !...वीर युवक ! अद्भुत हो तुम !...”

“परन्तु एक शर्त पर !...”

“वह क्या ?”—सम्राट ने पूछा ।

“वह यह कि आपको मुझसे खड्गयुद्ध करना पड़ेगा और पर्णिक ने, कृपाण खींच ली । आर्य सम्राट युवक का क्रोध देखकर आश्चर्य चकित हो गये । आज तक किसी व्यक्ति ने उनसे इस प्रकार निर्भीकता-पूर्ण बातें नहीं की थीं और न तो युद्ध में कोई आर्य सम्राट को विजय ही कर सकता था । पर्णिक का क्रोध देखकर आर्य सम्राट को हँसी आ गई—ओह ! यह नादान युवक आर्य सम्राट का हस्त कौशल देखना चाहता है !...इसे कृपाण के दो चार हाथ दिखा देना चाहिये । उन्होंने भी अपना कृपाण खींच लिया, परन्तु कुछ ही क्षणों में उन्हें ज्ञात हो गया कि किरातों की उस छुद्रटोली का नायक, वास्तव में समग्र आर्य सेना का नायक होने की योग्यता रखता है ।

“आप पराजित हुए श्रीमान् ।”—पर्णिक ने चिल्लाकर कहा—
“मैं आपको जमा करता हूँ”—वास्तव में आर्य सम्राट पराजित हुए थे । वे चकित हो उठे, उस युवक किरात का अद्भुत पराक्रम देखकर ।

“आज तुमने आर्य सेना के सर्वश्रेष्ठ वीर का मानभर्दन किया है वीर युवक !”—सम्राट ने कहा—“मैं तुम्हें आर्य सेना का संचालक नियुक्त करता हूँ...”

“यह पद तभी स्वीकार कर सकता हूँ आर्य सम्राट् ! जब आप मुझे यह आश्वासन दें कि आप हमारे देश को अपना कार्यक्षेत्र न बनायेंगे और हमारी मान-मर्यादा पर कुठाराघात न करेंगे ।”

“विश्वास को पैरों तले रौंदकर मैं अपना मार्ग संकीर्ण नहीं बनाना चाहता वीर युवक ! मैं तुम्हें आश्वासन देता हूँ ।”

“तो मुझे स्वीकार है ।”

किरात-समुदाय के जयघोष से आकाशमण्डल गूँज उठा ।

राजसभा में घोर नीरवता थी। सभी की मुखाकृति ग्लान एवं भय-भीत भंगिमा धारण किये हुए थी। द्रविडराज स्वर्णसिंहासन पर विराजमान थे। उनसे उच्चासन पर आसीन थे महापुजारी पौत्तालिक। युवराज एवं नगर के सभी गणमान्य सज्जन उपस्थित थे। आज राजसभा में कई महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विनिमय हो रहा था।

“परन्तु आर्य सम्राट् के इस प्रकार अचानक आक्रमण का कारण क्या हो सकता है !—” महापुजारी ने निस्तब्धता भंग करते हुए पूछा।

“गुरुदेव !”—पास ही खड़े हुए गुप्तचर ने नतमस्तक होकर उत्तर दिया—“सुनने में आया है कि आर्यसम्राट् मध्य अशान्त महाद्वीप से कुछ आर्यजनों को यहाँ लाकर बसाना चाहते हैं—ताकि उनलोगों द्वारा यहाँ पर आर्य-संस्कृति का प्रचार हो...”

“ठीक...” द्रविडराज के मस्तक पर दुश्चिन्ता की रेखायें खिंच आईं। वे अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़े हुए—“प्रिय प्रजाजनों !”—वे उच्च स्वर में बोले—“आज युगों की सुख-शान्ति के पश्चात् क्रान्ति का का समय आया है। एक विदेशी शासक ने हमारे ऊपर अन्यायपूर्ण आक्रमण किया है। अबतक हम स्वाधीन थे—अब परतन्त्र कैसे बन सकते हैं ! आज तक यह देश अपना था, इसे हम विदेशियों के हाथ कैसे सौंप दे सकते हैं !...हमें इस आक्रमण का प्रत्युत्तर देना होगा। वीरतापूर्वक समराङ्गण में हम अपने स्वत्व के लिये मर मिटेंगे। यह जम्बूद्वीप हमारा था, हमारा है और हमारा होकर रहेगा। हमलोग इसपर विदेशियों का पैर स्थिर नहीं रहने दे सकते...वीरों ! क्या तुम लोग यह चाहते हो कि यह पवित्र शस्य-श्यामला भूमि फिरंगियों के चरणों तले रौंदी जाय ! क्या तुम चाहते हो कि हमलोग अपनी सुखशान्ति एवं वैभव बेंच दें विदेशियों के हाथ ! क्या तुम चाहते हो कि अपना सब कुछ लुटाकर, अपनी समस्त मानमर्यादा विदेशियों के चरणों पर रखकर, स्वयं भिखारी

बन बैठो ! क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी क्षणिक कायरता से तुम्हारी जननी जन्मभूमि के श्वेत सुकोमल पैरों में सदैव के लिये परतन्त्रता की बेड़ियाँ जकड़ दी जाँय !...

“नहीं ! हमलोग यह कुछ भी नहीं चाहते...” उपस्थित वीर समुदाय गर्जन कर उठा—“चाहते हैं स्वदेश की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देना...”

“धन्य ! पुष्पपुर के वीर नागरिक, धन्य !...” महापुजारी बोले ।

“आज हमारी परीक्षा का समय आया है ।”—युवराज खड़े होकर कहने लगे—“आज तक हम चैन का जीवन व्यतीत करते आ रहे थे—परन्तु आज, जब कि हमारा स्वदेश सित्त नेत्रों से हमारी ओर देख रहा है, हम कायर न बनेंगे । उसकी रक्षा के लिये अपना तन-मन प्राण, सब कुछ विसर्जन कर देंगे । हम अपनी वीरता को कलंक न लगायेंगे, अपने पूर्वजों के पवित्र रक्त को दूषित न करेंगे...”

“श्रीसम्राट् !...” द्वारपायक ने आकर निवेदन किया—“द्वार पर आर्य-सम्राट् द्वारा प्रेषित राजदूत उपस्थित है और श्रीसम्राट् के चरणकमलों का दर्शनाभिलाषी है...”

“उपस्थित करो”—द्रविड़राज ने आशा दी ।

राजदूत आया । उसने नतमस्तक होकर द्रविड़राज एवं युवराज को अभिवादन किया—“श्रीमान् की सेवा में मैं आर्यसम्राट् का शुभ-सन्देश लाया हूँ...” उसने कहा ।

“शुभ-सन्देश ?” द्रविड़राज व्यंग्यपूर्वक हँसे—“कौन-सा शुभ सन्देश !...सुनें तो !”

“यह तो आप जानते ही हैं कि आर्यसम्राट् का श्रीमान् से कोई विद्वेष नहीं है”—राजदूत ने कहा—द्रविड़राज ने स्वीकारोक्ति दी—दूत पुनः बोला—“हमारे सम्राट् केवल अपने कुछ स्वजनों के जीविकार्थ आपके साम्राज्य के कुछ भाग की याचना करते हैं । अस्वीकार करने पर बलप्रयोग...”

“बलप्रयोग !”—समस्त राजसभा क्रोधपूर्ण स्वर में चिल्ला उठी । युवराज ने दौट पीसा । द्रविड़राज स्थिर रहे ।

“हाँ, बलप्रयोग !”—निर्भीक राजदूत ने उत्तर दिया—“बलप्रयोग राजनीति का प्रधान अंग है ।”

“वाचना के साथ, बलप्रयोग !...क्या यही तुम्हारे देश की संस्कृति एवं तुम्हारे आर्यसम्राट् की राजनीति है ?...”

“राजदूत के समक्ष श्रीमान् उसके सम्राट् का अपमान न करें”—दूत ने कहा—“मेरे सम्राट् की बातें स्वीकार कर लेने में ही आप सब का लाभ एवं कल्याण है—आपलोग किसी प्रकार भी उनके प्रबल वेग को सम्हाल नहीं सकते”

“सम्हाल नहीं सकते ?...राजदूत ! जिस समय तुम्हारे सम्राट् की सेना हमसे युद्ध में तत्पर होगी, तब ज्ञात होगा कि वास्तविक बीगता किसमें है ?”—द्रविड़राज बोले ।

“श्रीमान् को विदित हो कि किरात युवकों की एक टोली, उनके नायक समेत, हमारे सम्राट् की सहायता में तत्पर हो गई है । अब हमें मार्ग-प्रदर्शन में आशातीत सहायता मिलेगी, और मुझे आशा है कि आपकी सेना के तैयार होने के पूर्व ही हमारी सेना नगर पुष्पपुर में प्रवेश कर जायगी...”

“तुम भूलते हो राजदूत !...हमारी सेना पूर्णरूप से प्रस्तुत है और आर्य-शिविर में तुम्हारे पहुँचने के पहले ही हमारी सेना वहाँ पहुँच जायगी । तुम निश्चिन्त रहो...अपने सम्राट् से जाकर कहो कि उन्होंने हमपर अकारण ही आक्रमण कर अपने को हमारी दृष्टि में हेय एवं घृणित प्रमाणित कर दिया है । उनके इस आक्रमण से हमारे सम्मान पर धक्का पहुँचा है । इसके प्रतिकार के लिये वे प्रस्तुत रहें । द्रविड़राज की विजयवाहिनी शक्ति शीघ्र ही तुम्हारे सम्राट् का गर्व खर्व कर देगी...” युवराज बोले ।

राजदूत ने पूछा—क्या यह श्रीमान् का अन्तिम निर्णय है ?

“अवश्य !...”

राजदूत ने मस्तक झुकाया, और राजसभा से बाहर हो गया। कई क्षणों तक राजसभा में घोर निस्तब्धता का साम्राज्य छाया रहा। किंचित देर पश्चात् द्रविड़राज बोले—“हमें अत्यन्त शीघ्र सब तैयारी करके अपनी सेना गुप्तमार्ग द्वारा भेज देनी चाहिये, ताकि सीमान्त पर ही हम आर्य सेना को रोक सकें। गुप्तमार्ग द्वारा वहाँ तक पहुँचना केवल दो घड़ी का कार्य है—यों तो वहाँ जाने में आठ घड़ी लग जायेंगे। अगर इसके पहले कि हम अपनी सेना युद्धभूमि की ओर भेजें, हमें एक सेनाधिप की आवश्यकता है, जो इस कार्य को सफलतापूर्वक प्रतिपादन कर सके... इस कार्य के लिये मैं स्वयं अपने को...”

“श्रीसम्राट् !”—युवराज बोले—“आपकी आवश्यकता नहीं। मैं सेनाधिप का कार्यभार सम्हाल लूँगा। मुझे आशा है कि मेरी यह तुच्छ याचना श्रीसम्राट् को अस्वीकृत न होगी...”

“युवराज !...” द्रविड़राज बोले—“यह मेरे लिये सौभाग्य का विषय है कि तुम जैसा योग्य पुत्र स्वदेश रक्षा के लिये रणवेदो पर बलि हो...”

“मैं जीते जी स्वदेशाभिमान पर कलंक न लगने दूँगा...”

“युवराज की जय !”—सब ने एक स्वर में कहा। युवराज इस युद्ध के लिये सेनाधिप नियुक्त हुए।

“परन्तु श्रीसम्राट् !...” महापुजारी अस्फुट स्वर में बोले—“श्री युवराज को रणक्षेत्र में भेजना ठीक नहीं होगा।”

“महापुजारी जी का तात्पर्य ?”—द्रविड़राज को आश्चर्य हुआ।

“इस वर्ष श्री युवराज की जन्मकुण्डली में अनिष्टकारी ग्रह आ गये हैं—जिससे महान् विपत्ति की आशंका है। अच्छा हो, श्री युवराज का जाना स्थगित कर, स्वयं आप युद्धक्षेत्र में पदार्पण करें...”

“यही ठीक होगा”—सम्राट् युगपाणि सशक्ति स्वर में बोले—
“पायक युवराज को बुलाओ।”

युवराज आये।—“आशा गुरुदेव !” उन्होंने पूछा।

“वत्स !...” महापुजारी बोले—“समरांगण में तुम्हारा जाना न हो सकेगा....”

“इसका कारण !...”

“श्रीसम्राट् की आशा !...” महापुजारी बोले। युवराज ने द्रवि-
डराज की ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा।

“युद्ध का संचालन कौन करेगा ?”—

“स्वयं श्रीसम्राट् !” महापुजारी ने कहा।

“यह कैसे हो सकता है महापुजारी जी !...पिता कष्ट का सामना करते हुए युद्धक्षेत्र में प्राणोत्सर्ग करें और पुत्र राज्यप्रकोष्ठ में बैठा हुआ आनन्द का उपभोग करे !...यह अन्याय है गुरुदेव ! ऐसा न होना चाहिये, ऐसा न होगा। मेरे जीवन की प्रबल आकांक्षा है, युद्धक्षेत्र में अपने कौशल की परीक्षा करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरा यह अधम शरीर मेरे देश के, मेरे पिता के कार्य साधन में उत्सर्ग हो...”

“युवराज !...”

“पिता जी !...”

“तुम्हारा कर्तव्य है पिता की आशा शिरोधार्य करना।”—

“मुझे विश्वास नहीं है पिताजी ! ये वाक्य आपके विशुद्ध अन्त-
स्त्तल से निकल रहे हैं—मैं नहीं समझता कि यह आशा मेरे न्यायी पिता के हृदय ने दी है।...यह आशा दी है मर्मव्यथा से व्यथित एवं पुत्रप्रेम से उन्मत्त एक असहाय आत्मा ने...”

“.....”

“आप चुप हैं पिता जी !...चुप हैं आप !...आज तक आपकी आशा सुनता रहा, क्या अब एक क्षण के लिये स्वदेश की पुकार न

सुनूँ ! आज तक आपका चरण पूजता रहा, क्या अब एक दिन के लिये बलिवेदी का चरण न पूजूँ !...आप भी यही चाहते हैं पिता जी !...आपकी भी यही आकांक्षा है कि मैं कायर की भौति अपनी संस्कृति को दूषित करूँ !...आशा दीजिये ! गुप्तमार्ग द्वारा मैंने अपनी समग्र सेना सीमान्त की ओर भेज दी है, कल प्रातःकाल प्रातःपूजन के पश्चात् मैं भी प्रस्थान कर दूँगा । मुझे आशीर्वाद दीजिये, कि मैं आत्मोत्सर्ग कर पिता के उज्ज्वल यश की रक्षा कर सकूँ । आजतक जिस पिता ने अपनी स्नेहमयी गोद में पाला, जिसने वीरत्व की गाथायें सुनाकर मेरे हृदय में आत्मोत्सर्ग की अग्नि प्रज्वलित की—क्या वही पिता कभी यह देख सकता है कि स्वदेश की स्वतन्त्रता परतंत्रता में परिणत हो और मुझे जैसा युवक उसे शान्त चित्त से देखता रहे !

युवराज की युक्ति-संगत बातें सुनकर द्रविड़राज को मौन हो जाना पड़ा ।

×

×

×

“यह तुम क्या कह रहे हो चक्रवाल !—” किन्नरी निहारिका ने कहा—“क्या वास्तव में श्री युवराज रणक्षेत्र को प्रस्थान कर रहे हैं !”

“हाँ !...आर्य सेना ने द्रविड़राज पर आक्रमण किया है । श्री युवराज द्रविड़ सेना के अध्यक्ष चुने गये हैं...”

“क्या श्रीमम्राट की सम्मति से ?—”

“प्रथम तो श्रीसम्राट श्री युवराज को रणक्षेत्र में नहीं जाने देना चाहते थे । परन्तु श्रीयुवराज के दृढ़ से वे बाध्य हो गये । समग्र सेना गुप्तमार्ग द्वारा सीमान्त की ओर भेज दी गई है—श्री युवराज भी कल प्रातःकाल प्रस्थान करेंगे—”

“क्या होनेवाला है चक्रवाल !”—किन्नरी खिन्न स्वर में बोली—“जिस समय मैं शुद्ध हृदय से महामाया के समन्व नृत्य करती हूँ—तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानों महामाया के मुख से भयंकर

प्रलयाग्नि निकल रहा है...यह देखो ! मेरी दक्षिण बाँह फड़क उठी ।
अवश्य कुछ न कुछ होगा चक्रवाल !...”

“इधर बहुत दिनों से मैं भी अत्यन्त भयभीत हो रहा हूँ—यह देख-
कर ही मैं अपने हृदय में सुखद गीत गाने की धारणा करता हूँ, मगर
वीणा कर में लेते ही उससे दुखत गीत की धारा प्रवाहित हो उठती है ।
मैं बहुत चाहता हूँ कि ऐसा न हो—परन्तु महामाया की इच्छा !....”

“कल वे प्रातःकाल चले जायेंगे—इधर बहुत दिनों से उनसे भेंट
भी नहीं हुई । हृदय अत्यन्त व्यग्र है चक्रवाल !...हृदय में ऐसा भान
होता है कि कदाचित् अब वे हमें हमें सदैव के लिये त्याग कर जा रहे
हैं...ऐसा यत्न करो कि एकबार उससे मिलन हो जाय चक्रवाल !...”

“यह कैसे हो सकता है निहारिका ! वे अत्यधिक व्यस्त हैं । कल
प्रातःकाल मन्दिर में उनके दर्शन कर लेना...”

“मैं उनसे भाषण करना चाहती हूँ चक्रवाल ! अब तक जो दारुण
जलन, जो असहनीय व्यथा, अपने हृदय में अन्तर्हित किये बैठा हूँ—
अब उनपर प्रकट कर देना चाहती हूँ । तुम मेरा इतना उपकार कर दो
चक्रवाल !...” किन्नरी के नेत्रों से अश्रुविन्दु टपक पड़े ।

“तुम व्यथित हो रही हो”—चक्रवाल शान्त स्वर में बोला—
“तुम्हें दारुण ज्वाला दग्धित कर रहा है !...किन्नरी ! अपने हृदयदेव
पर अपनी व्यथा प्रकट कर उन्हें विचलित न कर देना...मैं जा रहा हूँ ।
अगर वे आ सकें तो मैं उन्हें यहाँ तक लाऊँगा...”

चक्रवाल चला गया । किन्नरी पलंग पर गिरकर रुदन करने लगी ।
उसका अंचल भौंग गया । उफ़ ! आज उसे जो दुःख एवं जो वेदना
हो रही है; वह वर्णनातीत है । आज उसके हृदय पर जो कुछ बीत रही
है, वह असह्य है ।

“किन्नरी !”—चक्रवाल आकर बोला—“श्री युवराज से भेंट नहीं
हुई । वे युद्ध कार्य से कहीं गये हैं...”

नीहारिका घड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी। अर्द्धरात्रि तक नीहारिका अपने पलंग पर बैठी हुई सिसकती रही। उसके नेत्रों के समक्ष युवराज की सौम्य प्रतिमा नृत्य कर रही थी। अर्द्धरात्रि को अपने द्वार पर थपकी की ध्वनि सुनकर उसने कपाट खोले। वह भयभीत हो उठी—उस भयानक बनमानुष बनराज जम्बुक को वहाँ खड़े देखकर। जम्बुक सशक्त भाव से किन्नरी के प्रकोष्ठ के भीतर आ रहा और अपने लम्बे बालदार हाथों द्वारा भीतर से द्वार बन्द कर दिया। किन्नरी ने देखा, जम्बुक के हाथ में कोई पत्र है। जम्बुक ने हाथ आगे करके, भोजपत्र पर लिखा हुआ वह पत्र, किन्नरी के करों पर रख दिया। वह युवराज का पत्र था। किन्नरी ने उस पत्र को मस्तक से लगाया, पुनः पढ़ा—

कलामयी !

क्या इस समय जम्बुक के साथ तुम थोड़ी देर के लिये राजोद्यान में आ सकती हो ?

—नारिकेल ।

वह तुरन्त ही जम्बुक के साथ बाहर निकली। राजोद्यान में सन्नाटा छाया हुआ था और वहीं एक स्फटिक आसन पर बैठे हुए युवराज नारिकेल किन्नरी निहारिका की प्रतीक्षा कर रहे थे। जम्बुक के साथ किन्नरी आई। उसने युवराज को सम्मान-प्रदर्शन किया। युवराज ने कोमल वाणी में कहा—“बैठो !...” किन्नरी आज बिना किसी द्विविधा के युवराज के पार्श्व में बैठ गई। जम्बुक मस्तक नीचा किये हुए, एक समझदार व्यक्ति की भाँति, वहाँ से कुछ दूर चला गया और एक वृक्ष के नीचे खड़ा होकर अपना शरीर खुजलाने में व्यस्त हो गया।

“किन्नरी !...”

“देव !...”

“तुम्हें अतीव कष्ट हुआ होगा !...”

“कष्ट किस बात का है देव !...”

“कल मैं रणक्षेत्र को जा रहा हूँ । हृदय अत्यन्त व्यथित था—
तुमसे मिलने की लालसा रोक न सका...”

“यह श्रीयुवराज की अत्यन्त कृपा है...मगर हमलोगों की क्या
दशा होगी श्री युवराज ! आप का बिछोह हमलोग किस प्रकार सहन
कर सकेंगे देव !”—किन्नरी का स्वर कम्पित था ।

“मनुष्य को महामाया ने सहन-शक्ति प्रदान की है किन्नरी !”

परन्तु मनुष्य का हृदय पाषाण-सा कठोर नहीं बनाया है देव !...”

“यह क्या !...तुम रो रही हो !...तुम्हें पीड़ा पहुँच रही है !
कलामयी ! मुझे कायर न बनाओ । इन अश्रुविन्दुओं को देखकर मेरी
सारी शक्ति क्षीण होती जा रही है...”

“ये अश्रुकण ही तो शेष हैं देव ! और मेरे पास है ही क्या ?...
और सब तो आपके चरणों पर अर्पित कर चुकी । विश्राम, सुख एवं
हृदय—सब कुछ तो आपने छीन लिया...”

“ऐसा न कहो किन्नरी ! तुम्हारे पास अगम ऐश्वर्य एवं अतुल
सम्पदा का कोष है—मैं कितना छीन सकता हूँ...तुम कलामयी हो,
देवी हो...”

“अब तो हमें निराश्रय कर रहे हैं श्रीयुवराज ! आपके न रहने पर
किस प्रकार धैर्य रख सकूँगी मैं !...”

युवराज कुछ न बोले । बिछोह के स्मरणमात्र से उनके हृदय में
ध्वंसक संघर्ष मच गया था ।

राजोद्यान के कुमुदिनी पुष्पों द्वारा आच्छादित सरोवर का जल दोनों
के पैरों के सन्निकट हल्लोलें ले रहा था । कुमुदिनी के पुष्प अपनी मंदिर
मुस्कान द्वारा, उन दोनों मूक हृदयों का परिहास कर रहे थे । चक्रवाल
अपने प्रकोष्ठ में बैठा हुआ, इस अर्द्धरात्रि की बेला में, विहाग की करुण
स्वर-रागिनी अलाप कर प्रकृति को विकल कर रहा था—

कुमुदिनि तू क्वारी केहि हेत ।

बरबस वयस बितावत बावरी ! जलजहिं बरि किन लेत ?

मदमत्त कुमुदिनियाँ वायु के वेग से हिलकर एक दूसरे का मुख चुम्बन कर रही थीं—मानों चक्रवाल का गायन सुनकर स्नेहपूर्वक एक दूसरे से पूछ रही हों कि क्या वास्तव में जलज को वरण कर लें ?

युवराज ने किन्नरी का सुकोमल कर अपने कर में ले लिया और अपनी अनामिका की रत्नजड़ित मुद्रिका निकालकर किन्नरी की अनामिका में पहना दी। बहुत काल तक दोनों निस्तब्ध रहे। नीरव रजनी की स्थिरता के साथ-साथ उनके नेत्र भी स्थिर थे—एक दूसरे की मुखाकृति पर।

×

×

×

प्रातःकाल महामाया के मन्दिर में वृद्ध पूजनोत्सव हुआ, क्योंकि आज युवराज को रणक्षेत्र में जाने के लिए उनके मस्तक पर परम कल्याणकारी देवी के चरण का प्रसाद—कुंकुम—जगाया जाने वाला था। महापुजारी ने महामया की विधिवत् आराधना की। किन्नरी ने धड़कते हुए हृदय से आरती की थाल उठाकर आरती की। चक्रवाल ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से गाया—“वर दे शत्रुविनाशिनि वर दे।”

पूजन के पश्चात् किन्नरी ने कुंकुम की थाली उठा ली और मन्थर गति से युवराज की ओर बढ़ी। चक्रवाल ने अपनी वीणा उठाई। उसकी बाणी सिक्त थी—परन्तु उसने गाया—

लेकर कुंकुम थाली कर में, चलो चलें हम एक नगर में।

जहाँ न दुःख का नाम हो आली !

सुख की सरिता करे कलोल ।

प्राण पपीहे पी पी बोल ॥

बड़ा ही करुणाजनक दृश्य था। सब के हृदय पर आसीन, कर्त्तव्यशील युवराज की विदाई का वह दृश्य, परम हृदयद्रावक था। सभी के नेत्रों से अश्रु-कण प्रवाहित हो रहे थे। परम धैर्यवान महापुजारी भी आवेश से अपना मुख दूसरी ओर फेरकर बैठे हुए थे। कदाचित् उनके नेत्र अश्रु के प्रबल वेग सम्हालने में असमर्थ हो रहे थे।

कुंकुम की थाली लेकर किन्नरी युवराज के समक्ष आकर खड़ी हो गई। उसके नेत्र आसुओं से फट पड़ना चाहते थे। उसका स्वर फूट फूटकर रो उठना चाहता था।

किन्नरी ने कम्पित करों से थोड़ा सा कुंकुम उठाकर युवराज के मस्तक पर लगाया। लगाते समय उसके सिक्त नेत्रों से झर्र-झर्र अश्रुविन्दु झरकर युवराज की गोद में गिर पड़े। युवराज सहम गये, मगर गुरुजनों की उपस्थिति के कारण कुछ बोल न सके। किन्नरी लौट चली। उसके पग काँप रहे थे—उसका शरीर निर्जीव-सा हो रहा था। चार पग आगे बढ़ते ही वह घड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी। कुंकुम की थाली भयानक झुनटाटे के साथ दूर जा पड़ी। रक्तर्जित कुंकुम इधर उधर उड़कर भूमि का सम्पर्क करने लगा।

“किन्नरी !...” महापुजारी का तीव्र स्वर गूँज उठा। किन्नरी ने अपने को सम्हाला।

शीघ्र ही पूजन समाप्त हुआ। युवराज ने महापुजारी एवं द्रविडराज के पैर छुए। जम्बुक ने भी वैसा ही किया, क्योंकि युवराज का जन्म साथी वह दीर्घाकार वनमानुष भी युवराज के साथ ही रणक्षेत्र को जाने वाला था। महापुजारी एवं द्रविडराज ने दोनों की मंगल कामना की। द्रविडराज ने रुदित स्वर में जम्बुक से कहा—“जम्बुक ! युवराज को तेरे हाथों में सौंपता हूँ—देखना इसका अनिष्ट न हो”—जम्बुक ने सर झुकाया।

जिस समय जम्बुक को साथ लिये हुए युवराज मन्दिर से बाहर आ रहे थे, तो उन्होंने देखा कि एक कोने में किन्नरी निहारिका खड़ी है—“किन्नरी ! युवराज ने पुकारा, किन्नरी उनके पास तक चली आयी—“व्यथित न हो कलामयी ! मैं शीघ्र ही आ मिलूँगा...”

“.....” किन्नरी कुछ न बोली, केवल उसने अपने अंचल से थोड़ा-सा कुंकुम निकालकर पुनः उनके मस्तक पर लगा दिया।

“मुझे भूलोगी तो नहीं कलामयी !...”

“.....” ‘वह’ चुप रही ।

“बोलो किन्नरी !....”

“क्या बोलूँ देव !” — वह जोरों से रो पड़ी ।

‘पी पी बोल, पी पी बोल—प्राण पपीहे बोल’ — द्वार पर बैठा हुआ चक्रवाल अपनी विकल रागिनी बिखेर रहा था । उनके नेत्रों में थी आँसू की बूँदें और उसके हृदय में मचा था घनघोर दारुण संघर्षण ।



आर्य सम्राट् के विशाल शिविर के चतुर्दिक-शस्त्रधारी सैनिक पहरा दे रहे थे । अतीव सावधानतापूर्वक युद्ध की समग्र तैयारियों की जा रही थी, क्योंकि आर्य सम्राट् तिग्मांशु को यह भली प्रकार ज्ञात था कि स्वाभिमानी द्रविड़राज बिना युद्ध के कभी उनकी बात नहीं मान सकते । यद्यपि उन्होंने अपने दूत को बहुत प्रकार से समझा बुझाकर द्रविड़राज के पास भेजा था, फिर भी उन्हें यह विश्वास नहीं था कि द्रविड़राज युगपाणि इस प्रकार शान्तिपूर्वक उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लेंगे ।

आर्य सम्राट् तिग्मांशु अपनी रावटी में, अपने नवीन सैन्य-संचालक पणिक एवं अन्य युद्ध पदाधिकारियों के साथ किसी गुप्त मन्त्रणा में तल्लीन थे । रावटी के द्वारदेश पर कई सैनिक पहरा दे रहे थे । इस समय पणिक की वेशभूषा अनोखी थी । अब वह पहले का नग्न शरीरवाला, किरातकुमार पणिक नहीं था । उसके शरीर पर बहुमूल्य वस्त्र देदीप्यमान हो रहे थे, जिनकी आभा को उसके कंठ प्रदेश में सुसज्जित रत्नहार ने द्विगुणित कर रखा था । अनेक प्रकार के नवीन अस्त्र-शस्त्र उसके शरीर पर सुशोभित हो रहे थे, जिससे उसकी मुखाकृति

अतीव प्रतिभासम्पन्न दृष्टिगोचर हो रही थी। इधर कुछ दिनों के सहवास से आर्य सम्राट को विदित हो गया था कि किरात समुदाय में रहने वाला वीर युवक, वास्तव में उच्चकुलोत्पन्न है।

“यद्यपि हमने द्रविड़राज के पास अपना राज दूत भेज दिया है, परन्तु अभी-अभी हमारे गुप्तचर यह समाचार लाये हैं कि द्रविड़राज की सेना यहाँ से योजन भर की दूरी पर आ गई है और वहीं उनका शिविर पड़ गया है। अब हमें यह निश्चय कर लेना पड़ा कि बिना युद्ध के के हमारा कार्य सफलभूत नहीं हो सकता...मगर आश्चर्य तो यह है कि हमारा राजदूत अभी तक क्यों लौटा नहीं ?”

“श्रीमान् !”...परिणिक बोला....“विपत्ति की सेना आ गई है, यह हमारे लिए अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है। हमें युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिये।”

“उनकी सेना का संचालक कौन है ?”—पूछा आर्य सम्राट ने।

“पता लगा है...” एक सैनिक बोला—“अभी तक संचालक युद्ध क्षेत्र में आया नहीं है। प्रातःकाल आने वाला है...”

“कितनी सेना होगी ?”

“आर्य सेना की आधी !...”

“इतनी छोटी सेना लेकर किस प्रकार हमारा सामना करेंगे ?” आर्य सम्राट को आश्चर्य हुआ।

“मगर श्रीमान् !...” सैनिक बोला—“सुना है कि उनका संचालन करने के लिये राज्य कुल का कोई बहुत ही योग्य व्यक्ति आ रहा है। ऐसी अवस्था में हमें उन्हें निर्बल न समझ लेना चाहिये...”

“आ गये राजदूत ?”—द्रविड़राज के यहाँ से लौटे हुए राजदूत को आते देखकर आर्य सम्राट अतीव प्रसन्न हुए—“कहो क्या समाचार लाये हो ? क्या कहा उन्होंने ?”

राजदूत ने आर्य सम्राट को अभिवादन किया, तत्पश्चात् बोला—

“मेरा जाना निष्फल हुआ श्रीमान् !...द्रविडराज ने युद्ध की आकांक्षा प्रकट की है...साथ ही आपका एवं आपके धर्म का...”

“मेरा और मेरे धर्म का !...”

“जी हाँ ! अपमान किया है—कहा है उन्होंने कि आर्य सम्राट ने हम पर अन्याय पूर्ण आक्रमण करके अपने को हमारी दृष्टि में हेय एवं घृणित प्रमाणित कर दिया है...”

“यह कहा उन्होंने !...” दाँत पीसने लगे आर्य सम्राट्।

“जिस समय मैं वहाँ से लौटने लगा, उस समय तक द्रविड सेना युद्ध के लिए तनिक भी प्रस्तुत न थी—परन्तु आश्चर्य के साथ मैं देख रहा हूँ कि मेरे यहाँ आने के बहुत पहले ही उनकी सेना आ पहुँची है...”

“क्या तुम्हारे वहाँ से चल देने के पश्चात् इस सेना ने प्रस्थान किया है ?”—

“जी हाँ श्रीमान् !...बहुत समय पश्चात् !...”

“तो इतना शीघ्र उनके यहाँ आ पहुँचने का कारण ?”—आर्य-सम्राट आश्चर्य चकित थे।

“हो सकता है कि कोई गुप्त मार्ग हो, जिससे वे लोग यहाँ पहले आ पहुँचे हों”—पर्णिक ने कहा।

“ठीक कहते हो संचालक तुम ! यही कारण हो सकता है !”—आर्यसम्राट ने कहा—“जहाँ तक मेरा अनुमान है परसों प्रातःकाल तक उनकी सेना युद्ध के लिए पूर्णतया प्रस्तुत हो जायगी। संचालक ! कल प्रातःकाल तुम अपनी सेना का विधिवत् निरीक्षण कर लो, जिससे ठीक समय पर हम प्रत्याक्रमण करने में समर्थ हो सकें.....”

“जो आज्ञा श्रीमान् !...” पर्णिक ने कहा।

× × × ×

आर्यशिविर से एक योजन दक्खिन की ओर द्रविडसेना का शिविर था। द्रविडसेना यद्यपि आर्यसेना से संख्या में आधी थी, तथापि उसमें

अतीव उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा था। कई वर्षों से विश्राम का उपभोग करते हुए वीर योद्धागण इस युद्ध में भाग लेने के हेतु अत्यन्त लालायित एवं तत्पर थे। समग्र द्रविड़सेना अपने धर्म एवं स्वदेश की रक्षार्थ अपना जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत थी।

आज मध्याह्न को युवराज भी, जम्बुक के साथ गुप्तमार्ग द्वारा शिविर में आ पहुँचे थे—परन्तु उनका पदार्पण अत्यन्त गुप्त रखा गया था। यहाँ तक कि कुछ उच्च पदाधिकारी एवं कुछ गुप्तचरों तथा कुछ सैनिकों को छोड़कर अन्य किसी भी द्रविड़-सैनिक को उनका आना ज्ञात न था। चारों ओर यह बात फैला दी गई थी कि किसी कारणवश युवराज युद्धक्षेत्र में नहीं आयेंगे, वरन् उनके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति आवेगा। इस बात को गुप्त रखने का तात्पर्य क्या था—यह राजनीति के ज्ञाता ही बता सकते हैं।

इस समय दो प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी है। भयानक बनस्थली, द्रविड़सेना के शिविर के चतुर्दिक भाँय-भाँय कर रही है। बन्धु पशुओं की भाषण गर्जना गुञ्जरित हो रही है। युवराज की रावटी में इस समय युद्ध के कुछ प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की मन्त्रणा हो रही है, मगर, यह मन्त्रणा भी युवराज के पदार्पण की ही तरह गुप्त है। इस मन्त्रणा में केवल वही लोग सम्मिलित हैं, जो युवराज के आगमन के विषय में जानते हैं।

“वीरों !...” उच्चासन पर आसीन युवराज नारिकेल का स्वर उन वीरों के लिये वास्तव में वैधानिक शक्ति का संचार करनेवाला था—“यह तुम सब पर ज्ञात है कि आज तक द्रविड़ों के सम्मान में, द्रविड़ों की वीरता में तनिक भी कलंक नहीं लगा है—और न तो लगने की आशा है, जबतक कि द्रविड़ साम्राज्य का एक भी वीर योद्धा जीवित है...” युवराज रुके। एक क्षण के लिये उनके नेत्र अपनी सेना के प्रमुख वीर धेनुक पर जा पड़े, जो उनके सन्निकट ही आसीन था—तत्पश्चात् वे बोले—“आज आर्य सम्राट ने हमारे ऊपर अनाचार

पूर्ण आक्रमण कर दिया है, तो हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग कर एक अन्यायी को उसके अन्याय का समुचित दण्ड दें। आप निश्चय रखिये—यदि हम सब निरपराध हैं तो हमारी विजय महामाया के प्रसाद से निश्चित है आर्य सम्राट की सेना हमारी सेना से द्विगुण है—उनके पास अस्त्र शस्त्र भी अनेकों हैं। हैं। ऐसी दशा में हमारा क्या कर्त्तव्य होना चाहिये, यही मन्त्रणा करने हम यहाँ एकत्र हुए हैं...”

“श्रीयुवराज !”—धेनुक उठकर खड़ा हुआ एवं युवराज को अभिवादन करने के पश्चात् बोला—“आपका कथन असत्य नहीं है। आज हमारी कठिन परीक्षा का समय आ उपस्थित हुआ है। आज हम यदि कायर बन गये, तो हमारी स्वतन्त्रता एक विदेशी शासक के शासन में छिन्न-भिन्न हो जायगी... परन्तु श्रीयुवराज विश्वास रखें ! द्रविड़ों ने अबतक सम्मान का जीवन व्यतीत किया है, तो अब अपमान का जीवन व्यतीत करना न चाहेंगे, कभी न चाहेंगे—चाहेंगे मर मिटना अपने स्व-देशाभिमान पर अपनी स्वतन्त्रता पर ‘...श्रीयुवराज आज्ञा दें ! हम सब आपके श्रीचरणों पर बलिदान होने को प्रस्तुत हैं...”

“धन्य वीरों ! द्रविड़-साम्राज्य को आज तुम पर ही भरोसा है—तुम्हीं उसके आधार-स्तम्भ हो...यह तो लगभग तुम सभी लोगों को ज्ञात होगा कि पिताजी की आज्ञानुसार मेरा रणभूमि में आना प्रछन्न रखा गया है। यहाँ तक कि महापुजारी एवं पिताजी ने यहाँ आते समय मुझे यह भी आदेश दिया है कि मैं केवल शिविर में बैठकर युद्ध का संचालन करूँ—रणक्षेत्र में तबतक न जाऊँ जबतक कि कोई अत्यावश्यकीय कार्य न आ पड़े। ऐसी आज्ञा उन्होंने क्यों दी है, यह तो वही जाने—परन्तु उनकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है...”

“रणक्षेत्र में आपके जाने की कोई आवश्यकता नहीं है श्री युवराज !...आप यहाँ इस शिविर में बैठे बैठे युद्ध का संचालन करें। युद्ध के समाचार हम प्रत्येक क्षण विश्वस्त सैनिकों द्वारा आपके पास

युवराज का रावटी में से आज्ञा पत्र लेकर एक सैनिक धेनुक के पास आया । उस आज्ञा में युवराज ने धेनुक को आदेश दिया था कि वह तुरन्त ही अपनी सेना लेकर दक्षिण पश्चिम के मोर्चे पर चला जाय, उस स्थान पर जहाँ इस समय धेनुक युद्ध कर रहा था, केवल थोड़ी सी सेना छोड़ दे । यही था युवराज का आदेश और इसी ने धेनुक को आश्चर्यचकित कर दिया था । वह समझ ही न सका था कि युवराज के इस आदेश का तात्पर्य क्या है ?

परन्तु युवराज के आदेशानुसार उसे कार्य करना ही था । उसने तुरन्त ही अपनी सेना एकत्र की और केवल थोड़े से सैनिकों को उस स्थान पर छोड़कर शेष के साथ दक्षिण-पश्चिम के मोर्चे पर आया । वहाँ पहुँचते ही वह आश्चर्य-चकित रह गया, यह देखकर कि उस मोर्चे पर गुप्तरीति से आक्रमण करने के लिये आर्यों की एक बड़ी सेना चली आ रही है । वह सोचने लगा—“श्री युवराज की सैन्य-संचालन बुद्धि अद्भुत है । अवश्य ही उन्हें गुप्तचरों द्वारा इस आक्रमण का समाचार मिल गया था, तभी तो उन्होंने मुझे ऐसा आदेश दिया !...”

दक्षिण पश्चिम के मोर्चे पर घमासान युद्ध हुआ । उस युद्ध में आर्य सेना का संचालक स्वयं परिणक था । परन्तु द्रविड सेना पूर्ण रूप से प्रस्तुत थी । प्राणों की आहुति देकर युद्ध लड़नेवाले द्रविड वीरों एवं वीरवर धेनुक की प्रबल ललकार के आगे आर्य सेना के पैर उखड़ गये । रात्रि के आगमन के साथ ही युद्ध बन्द हुआ । आज की विजय का श्रेय द्रविड सेना को मिला ।

×

×

×

“आश्चर्य है श्रीमान ! परम आश्चर्य है !”—परिणक ने कहा—
“द्रविडों की इस छोटी-सी सेना ने आज आर्य सेना को पराजित किया ! यह कहानी-सी प्रतीत होती है—परन्तु है वास्तव में सत्य !”

“हमें परम कौतूहल है कि हमारी अगाध सेना के आगे द्रविडराज

की छोटी-सी सेना किस प्रकार टिक सकी, सो भी बिना किसी योग्य संचालक के..." आर्य सम्राट तिग्मांशु बोले—"उनका संचालक घेनुक है, परन्तु वह तो कोई बुद्धिमान संचालक शात नहीं होता..."

"श्रीमान् सत्य कह रहे हैं...यह घेनुक की बुद्धि का कार्य नहीं है, कि वह आर्य सेना का सामना कर सके। इस कार्य को कोई बहुत ही योग्य व्यक्ति संचालित कर रहा है"—

"क्या तुम्हारा यह अनुमान है कि इस युद्ध में कोई अन्य व्यक्ति द्रविड सेना का संचालन कर रहा है, जो कि रणभूमि में उपस्थित नहीं होता...."—आर्य सम्राट ने पूछा।

"श्रीमान् ठीक समझे।"—पर्णिक ने कहा।

"जी हाँ!"—एक दूसरा सैनिक बोला—"यही बात सत्य प्रतीत होती है। आज हमने द्रविडसेना के शिविर से कई बार एक भीमकाय बनमानुष को अपने हाथ में कोई पत्र लिये हुये रणभूमि में घेनुक के पास आते देखा था। इसके अतिरिक्त द्रविड-शिविर से कई अन्य सैनिक भी घेनुक के पास आये थे। अवश्य ही द्रविड सेना का वह योग्य संचालक किसी रावटी में बैठा हुआ युद्ध का संचालन करता है।"

"तुम किसी बनमानुष की बात कह रहे हो !..."सम्राट् ने पूछा।

"जी हाँ ! मेरा तात्पर्य यह है कि वह बनमानुष उस सञ्चालक का पत्रवाहक है। वह इतना दीर्घाकार एवं भयानक है कि देखते ही शरीर प्रकम्पित हो उठता है—परन्तु वह अतीव बुद्धिशाली प्रतीत होता है..."

"उनके दक्षिणी पश्चिम मोर्चे पर हमारा आक्रमण एकदम प्रच्छन्न रखा गया था, परन्तु न जाने कैसे वे लोग यह समाचार पा गये.....अब हमें भी उनके शिविर के पास अपने गुप्तचर निर्धारित कर देने चाहिये। सर्वप्रथम हमें द्रविड-सेना के इस गुप्त सञ्चालक का पता लगाना अत्यन्त आवश्यक है और तब हमें यह मालूम करना चाहिये कि वह गुप्त मार्ग कौन-सा है, जिससे द्रविड सेना यहाँ आ पहुँची थी।"—पर्णिक ने कहा।

“आज हमारी ऐसी पराजय हुई, जैसी कहीं, किसी भी देश में न हुई थी.....” आर्य सम्राट् बोले ।

× × × ×

अपनी रावटी में बैठे हुए युवराज युद्ध-प्रगति के सञ्चालन में निमग्न थे । जम्बुक युवराज के सन्निकट ही बैठा था । रावटी के द्वार पर युवराज के विश्वस्त सैनिक पहरा दे रहे थे । रणक्षेत्र में रणचण्डी नृत्य कर रही थी । युद्ध भयानक गति पर था ।

“क्या है !....” युवराज ने पूछा उस सैनिक से, जिसने अभी अभी ही युद्धक्षेत्र से आकर युवराज को अभिवादन किया था ।

“युद्ध भयंकर रूप धारण करता जा रहा है”—सैनिक ने नतमस्तक होकर कहा ।

“हमारी सेना का क्या समाचार है ?”—

“प्राणपण से शत्रुओं का सामना कर रही है—धेनुक ने पूछा है कि समग्र सेना उसी स्थान पर रहे या और किसी स्थान पर भेज दी जाय !...”

“किस मोर्चे पर युद्ध हो रहा है !...”

“दक्षिणी मोर्चे पर !”—

“अभी उसी स्थान पर सेना रहने दो”—युवराज ने कहा । सैनिक अभिवादन कर चला गया ।

“जम्बुक !...” युवराज ने पुकारा । वह भयानक बनमानुष उठकर उनके समक्ष आया, परन्तु युवराज को यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि उस दुर्दान्त जीव के नेत्रों में अश्रुकण विद्यमान हैं ।

“रोता क्यों है जम्बुक !” युवराज ने पूछा । जम्बुक ने अपना माथा ठोंककर ‘भाग्य का फेर’ कहने का नाट्य किया ।

“क्या है !”—एक गुप्तचर को प्रवेश करते हुए देखकर युवराज ने पूछा ।

“पता लगा है कि उत्तरी मोर्चे पर शत्रु सेना बहुत शीघ्र आक्रमण करनेवाली है”—गुप्तचर ने कहा ।

“बहुत शीघ्र !”—

“जी हाँ ! वहाँ का प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है । यही मोर्चा हमारे सबसे बड़े महत्व का है, क्योंकि हमारे गुप्त मार्ग का द्वार यहीं पर है”—

“मैं शीघ्र प्रबन्ध करता हूँ”—युवराज ने कहा—“जम्बुक ! बाहर से एक सैनिक बुलाओ !”

जम्बुक संकेत समझ गया । वह बाहर जाकर एक सैनिक बुला लाया । सैनिक ने युवराज को अभिवादन किया ।

“देखो !...” युवराज ने कहा—“तुम अभी अश्वारूढ़ होकर घेनुक के पास जाओ और उससे कहो कि आधी सेना दक्षिणी मोर्चे पर रखकर शेष आधी को उत्तरी मोर्चे पर भेज दे । बहुत ही गुप्तरीति से यह कार्य हो । सेना उत्तरी मोर्चे की ओर अत्यन्त शीघ्र एवं शान्ति-पूर्वक प्रस्थान करे और प्रच्छन्न रीति से जाकर गुप्त मार्ग पर छिप रहे । कुछ लोग पहाड़ी गुफाओं एवं झाड़ियों में छिप जायँ जिससे आक्रमण-कारियों को यह ज्ञात हो कि यहाँ एकदम सुनसान है । जब शत्रु सेना घाटी में से आने लगे, तो उनपर तीरों की वर्षा कर उन्हें धराशायी बना दें । परन्तु शब्द जरा भी न हो और न तो शत्रुगण यही जान सकें कि यह तीरों की वर्षा किधर से हो रही है—नहीं तो हमारा गुप्त मार्ग शत्रुओं पर प्रकट हो जायगा...”

X

X

X

“पराजय !...पराजय !...” पर्णिक हाथ मल रहा था जोरों से—एवं आर्य सम्राट् बैठे थे शान्त होकर—“सब ओर पराजय ही पराजय !...आज उत्तरी मोर्चे पर हमें जैसी लज्जाजनक पराजय उठानी पड़ी—वह वर्णनातीत है । हमारी सेना जिस समय वहाँ पहुँची, उस समय उस मोर्चे पर एकदम मरणासन्न नीरवता छाई हुई थी । ऐसा

प्रतीत होता था, जैसे वहाँ एक भी जीव उपस्थित नहीं है। परन्तु थोड़ा और आगे बढ़ते ही हमारी सेना पर तीरों की वर्षा होने लगी। कुछ पता ही न लगता था कि आक्रमणकारी किस ओर हैं...”

“अद्भुत है द्रविड सेना का वह गुप्त संचालक !”—आर्य सम्राट विस्फारित नेत्रों से बोले।

X

X

X

“क्या सनाचार लाये हो ?”—युवराज ने पूछा उस सैनिक से।

“श्री युवराज ! समर की धारा अबाध गति से प्रवाहित है। वीरों के शोणित में पृथ्वी का अञ्जल रक्तवर्ण हो रहा है। आपकी आज्ञानुसार घेनुक सैन्य का संचालन सुचारु रूप से कर रहा है। परन्तु आज के युद्ध में हमारे विजय की कोई आशा नहीं...”

“क्यों ?...ऐसा क्यों ?...” युवराज को आश्चर्य हुआ—“क्या है ?...” युवराज ने पूछा। एक दूसरा सैनिक अभी अभी ही रणक्षेत्र से आकर खड़ा हुआ था।

“घेनुक चारों ओर से घिर गया है श्री युवराज !”—दूसरा सैनिक बोला—“हमारी विजय की कोई आशा नहीं। द्रविड सेना के पाँव उखड़ना ही चाहते हैं...अब आपको रणक्षेत्र में चलना ही पड़ेगा...”

“मैं चलता हूँ !”—युवराज उठते हुए बोले—“जम्बुक ! मेरा अश्व ठीक करो...”

परन्तु जम्बुक युवराज के पास ही खड़ा रहा। उसने अपनी लम्बी सी तर्जनी उठाकर उन्हें रणक्षेत्र में जाने से मना किया, पुनः अपने वक्ष पर हाथ रखकर यह प्रदर्शित किया कि वह स्वयं रणक्षेत्र की ओर जाकर घेनुक की विपत्ति निवारण कर देगा।

युवराज देखते ही रहे और जम्बुक दौड़कर रावटी से बाहर हो गया। युवराज ने एक सैनिक से कहा—“जम्बुक गया है—देखो क्या करता है !...मैं यहाँ तैयार होकर बैठा हूँ। आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र ही मुझे बुला लेना...”

जम्बुक दौड़ता हुआ, वृक्षों और शाखाओं को प्रकम्पित करता हुआ, रणक्षेत्र में पहुँचा। अपना विकराल भीमकाय शरीर लेकर वह एक क्षण तक युद्धभूमि में नृत्य करती हुई भयानकता का अवलोकन करता रहा—तुरन्त ही उसकी दृष्टि उस ओर जा पड़ी, जिधर अगाध आर्य-सेना के मध्य में घिरा हुआ धेनुक अपनी अद्भुत वीरता का प्रदर्शन कर रहा था—परन्तु विवश था वह दुर्दान्त वीर अपने को अकेला पाकर। उसके मस्तक पर मृत्यु के सघन घन घहरा रहे थे।

वह भयङ्कर बनमानुष अपनी प्रखर बुद्धि द्वारा सब कुछ समझ गया। वह तीव्र वेग से उछला और भयानक गर्जन करता हुआ उस स्थल पर आ रहा, जहाँ धेनुक अपने प्राणों से खेल रहा था। जम्बुक को देखकर धेनुक महान आह्लादित हुआ। जम्बुक भी अपने भयानक पक्षों द्वारा आर्य सैनिकों की गर्दन पकड़-पकड़ कर मरोड़ने लगा। वह तीव्र वेग से, कभी इधर कभी उधर उछल उछलकर अपने भीमकाय शरीर द्वारा आर्य सैनिकों का मान-मर्दन करने लगा। उस दुर्दान्त जीव की अद्भुत रणकुशलता देखकर आर्य सैनिक अपना शस्त्र सञ्चालन भूल गये और भय से आर्तनाद करते हुए भाग चले।

“वाह जम्बुक ! खूब आये तुम !...मुझे मृत्यु से बचा लिया”—
धेनुक ने कहा, परन्तु जम्बुक का ध्यान उस ओर न था। वहाँ से कुछ दूर पर खड़े हुए एक युवक की ओर वह तीक्ष्ण नेत्रों से देख रहा था। वह युवक परिष्क था, जो कि अपने सैनिकों को अतीव उत्साह के साथ ललकार रहा था। उसके गले में पड़ा हुआ रत्नहार, जिसे उसकी माता ने आते समय प्रदान किया, इस समय सूर्य के प्रकाश में देदीप्यमान हो रहा था। जम्बुक न जाने क्यों कौतूहलपूर्ण दृष्टि से परिष्क की गर्दन में पड़े हुए उस रत्नहार की ओर देख रहा था। उसके नेत्र उस रत्नहार की अनोखी प्रतिभा पर निश्चल थे, परन्तु इतना ही नहीं था—उस बनमानुष की भंगिमा से यह प्रतीत होता था कि वह कदाचित्त उस

रत्नहार को पहचान रहा है या कभी उसने उस रत्नहार को देखा है । इस समय जम्बुक के जंगली स्मृति-पट पर कुछ वर्ष प्रथम की घटनायें घूम रही थीं ।

उसके नेत्रों का रंग परिवर्तित होने लगा, दूसरे ही क्षण उसके छोटे-छोटे क्रूर नेत्र क्रोध की लालिमा से आरक्त हो उठे । उसने भयानक गति से, जबड़े से बाहर निकले हुए अपने तीव्र दाँतों को कटकटाया, पुनः उसके मुख से क्रोध की तीव्र गुर्राहट निकल पड़ी । वह प्रबल वेग से पर्णिक के ऊपर झूटा । पर्णिक ने देखा—जिस बनमानुष के विषय में वह बहुत कुछ सुनता आ रहा था, इस समय उसपर आक्रमण करने को प्रस्तुत है । उसने साँगी सम्हाल कर झोंके के साथ साथ आते हुए उस बनमानुष के वक्ष की ओर लक्ष्य कर फेंका । साँगी जाकर उस बनमानुष के कंधे में लगी । उसके मुख से प्रबल चीत्कार की ध्वनि सुन पड़ी । वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा । परन्तु दूसरे क्षण वह भीमकाय बनमानुष उठ खड़ा हुआ । उसने अपने कंधे में लगी उस साँगी को सर्र से खींच कर दूर फेंक दिया और पुनः झूटा पर्णिक को ओर । उसके कंधे के घाव से अविरल रक्तश्राव होने लगा । पर्णिक घबड़ा गया । उसने पुनः कई साँगियाँ फेंकी, परन्तु जम्बुक को एक भी न लगी । दूसरे ही क्षण उस दुर्दान्त जीव ने पर्णिक को छाप लिया । उसके लम्बे हाथ की चौड़ी हथेली चट्ट से पर्णिक के कपोलों पर जा पड़ी । उसके नेत्रों के समक्ष अन्धकार छा गया । उसके मस्तिष्क से भयानक चिनगारियाँ-सी उड़ने लगीं । वह चेतनाहीन होकर गिर पड़ा भूमि पर ।

जम्बुक ने हाथ बढ़ाकर पर्णिक के गले का वह रत्नहार खींच लिया । कुछ क्षणों तक वह रत्नहार की ओर अनिमेष नयनों से देखता रहा । उसके मुख से प्रसन्नता की किलकारी निकल पड़ी । वह हर्ष से चिन्हाड़ करता हुआ, रत्नहार अपनी मुट्ठी में लिये हुए, अपने शिविर की ओर दौड़ा । ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह उस रत्नहार को पह-

जानता हो। उसके घाव से रक्त प्रवाहित हो रहा था, परन्तु इस ओर उसका ध्यान ही न था।

उधर से सन्ध्या का आवाहन करने की प्रस्तुत था, रञ्जित प्रदोष-युक्त नीलाकाश !



आर्य शिविर की एक रावटी में आर्य सम्राट तिग्मांशु उपस्थित हैं और उन्हीं के समक्ष लेटा हुआ घायल पर्णिक पीड़ा से कराह रहा है।

“कुछ न पूछिये श्रीमान् !...” पर्णिक ने कहा—“इतना भयानक है वह बनमानुष कि जिसकी गणना नहीं। मेरे रत्नहार से उसको न जाने कौन-सी शत्रुता थी, कि वह उसे भी छीन ले गया। इस समय माता जी के वे शब्द मुझे स्मरण हो रहे हैं, जब कि उन्होंने कहा था कि वत्स ! इस रत्नहार को अपने से विलग न करना। यह हमारे कुल का परम पवित्र रत्नहार है। जब यह तुमसे विलग होगा, तो अवश्य ही तुमपर कोई न कोई विपत्ति आयेगी।....”

“वह तुम्हारे कुल का पवित्र रत्नहार था !...” आश्चर्य हुआ आर्य सम्राट को—“क्या किरातकुल में इतने बहुमूल्य रत्नहार भी पाये जाते हैं।

“नहीं श्रीमान् !...” पर्णिक ने कहा—“मैं किरातकुल का नहीं हूँ। हमारी माताजी न जाने कहाँ से आकर इन किरातों के समुदाय में रहने लगी थी। उस समय मैं गर्भ में था...”

X

X

X

X

युवराज चौक पड़े, बम्बुक को रक्करचित आते हुए देखकर। बम्बुक दोड़ता हुआ आ रहा था। युवराज के पैरों के पास आकर वह चक्कर

खाकर गिर पड़ा और चेतनाहीन हो गया। उसके शरीर से अत्याधिक रक्तस्राव हो गया था। अपने जन्म साथी को इसप्रकार चेतनाहीन देखकर युवराज दौड़ पड़े। कई सैनिकों ने जम्बुक को सम्हाला। उसका विधिवत् उपचार होने लगा। युवराज न देखा—उसने कन्धे पर का घाव भयानक था।

“इसे किसने आहत किया !”—पूछा युवराज ने क्रोधयुक्त स्वर में।

“किरातों के नायक एवं आर्य सेना के वर्तमान संचालक ने....” धेनुक नतमस्तक होकर बोला।

“मैं इसका प्रतिशोध लूँगा”—युवराज दृढ़ स्वर में गरजे। राबटी में मरणासन्न नीरवता विद्यमान थी।

“यह क्या !...” एकाएक युवराज की दृष्टि जम्बुक की बन्द मुट्ठी की ओर जा पड़ी, जिसमें कोई प्रकाशमान वस्तु दृष्टिगोचर हो रही थी—“यह क्या है इसके हाथ में !....इसे लाओ मेरे पास !....” युवराज, ने आशा दी।

धेनुक ने जम्बुक की हथेली खोली। सब आश्चर्यचकित रह गये, उसकी हथेली में उपस्थित मूल्यवान रत्नहार देखकर। धेनुक ने वह रत्नहार लाकर युवराज के हाथों पर रख दिया, बोला—“यह उसी किरात-नायक का रत्नहार है। जम्बुक ने इसे मेरे ही समक्ष छीना था...”

“किरात-नायक का रत्नहार ! ...आश्चर्य !...” युवराज के मुख से अस्फुट स्वर निकल पड़े—“परन्तु....परन्तु हमपर तो....हमपर तो...यह देखो !...देखो धेनुक !...”

आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से सब ने देखा कि द्रविड़कुल के वंश परम्परा का चिन्ह उपस्थित है—उस रत्नहार के प्रत्येक रत्नों पर। सब अवाक रह गये। सबने उस पवित्र रत्नहार को नतमस्तक हो प्रणाम किया। युवराज उतावली के साथ बोले—“देख रहे हो !...देख रहे

हो न !...प्रत्येक मणि पर वही चिन्ह, द्रविडकुल का पवित्र चिन्ह !.... मगर यह शत्रु के पास कैसे जा पहुँचा !....देखो ! कितना मूर्खवान रत्नहार है यह !...वह चोर है !...चोर है वह किरातों का दुष्ट नायक !...उसने द्रविडकुल के पवित्र रत्नहार की चोरी की है। पिता जी एक दिन कहते थे कि उस रत्नहार को कोई चोर उठा ले गया है। मैं नहीं जानता था कि वह चोर इस प्रकार सरलतापूर्वक हाथ आ जायगा...धेनुक !...”

“श्री युवराज !...”

“देखते हो न !...आज जम्बुक द्रविडकुल की लज्जा लौटा लाया। पिताजी यह रत्नहार देखकर कितने प्रसन्न होंगे, कितने आह्लादित होंगे...”

“मेरा विचार है कि यह पवित्र रत्नहार श्री सम्राट के पास अभी भेज दिया जाय श्री युवराज !” धेनुक बोला—“कदाचित इसमें कोई गुप्त रहस्य हो...”

“यथार्थ कहते हो तुम ! मैं अभी गुप्त मार्ग द्वारा इस रत्नहार को पिता जी के पास भेजना चाहता हूँ। तुम एक विश्वस्त सैनिक को मेरे पास बुलाओ”—युवराज ने कहा, तत्पश्चात् भोजपत्र पर द्रविड-राज को एक पत्र लिखने लगे।

धेनुक बाहर जाकर एक विश्वस्त सैनिक बुला लाया—“देखो !”—युवराज उस सैनिक को वह पत्र देते हुए बोले—“तुम गुप्त मार्ग द्वारा अत्यन्त शीघ्र पिताजी के पास चले जाओ। उन्हें मेरा यह पत्र और पवित्र रत्नहार दे देना और यहाँ का सब समाचार विस्तार पूर्वक निवेदन कर देना....कोई आवश्यकीय सामाचार हो तो शीघ्र मेरे पास लेकर आना...उनसे यह भी कह देना कि मैं चोर को समुचित दंड देने की व्यवस्था कर रहा हूँ।”

सैनिक ने वह पत्र और रत्नहार यत्नपूर्वक ले लिया, पुनः युवराज को सम्मान-प्रदर्शन करने के पश्चात् रावटी से बाहर निकल गया और

पैदल ही उत्तर की ओर चल पड़ा। भयानक बन के मध्य से वह सैनिक चला जा रहा था, परन्तु उसे इस बात का तनिक भी पता न था कि एक गुञ्जान भाड़ी से निकल कर कोई मनुष्य गुप्तरीति से उसका पीछा कर रहा है। वह मनुष्य अतीव सावधानी से उस सैनिक का अनुसरण कर रहा था, मगर वह सैनिक असावधानी से चला जा रहा था। उसे इस बात की तनिक भी आशंका न थी कि इस वन्य-प्रदेश में कोई मनुष्य उसका पीछा कर सकता है।

एक स्थान पर जहाँ हिमराज का शिखर कुछ ऊँचा था, जहाँ गुञ्जान भाड़ियों ने अपना विकराल रूप प्रसारित कर रखा था, जहाँ जाते ही सहज भयानकता का भान होता था—वह सैनिक आकर रुका। यहीं उस गुप्त मार्ग का प्रवेश द्वार था। सैनिक ने एक बार सावधानता पूर्वक अपने चारों ओर देखा, परन्तु अपना पीछा करने वाले मनुष्य को वह देख न सका। जब उसे विश्वास हो गया कि उसका वहाँ आना किसी ने नहीं देखा है, तो वह एक गुञ्जान भाड़ी में घुसकर विलुप्त हो गया।

उसका पीछा करने वाला मनुष्य बहुत देर तक निस्तब्ध खड़ा हुआ उसकी प्रतीक्षा करता रहा, कदाचित् उसे आशा थी कि वह सैनिक शीघ्र ही लौटकर आवेगा। परन्तु जब बहुत समय व्यतीत हो गया और वह सैनिक न लौटा, तो वह मनुष्य धीरे धीरे उस गुञ्जान भाड़ी की ओर बढ़ने लगा, जिसमें वह सैनिक जाकर लुप्त हुआ था। भाड़ी के पास पहुँच कर उसने आहट ली, परन्तु सब ओर सन्नाटा पाकर उसका साहस बढ़ा। वह भी उस गुञ्जान भाड़ी में प्रवेश कर गया। परन्तु दूसरे ही क्षण वह चौंक पड़ा, उस गुञ्जान भाड़ी के क्रोड़ में अवस्थित एक प्रशस्त कन्दरा का प्रवेश-द्वार देखकर।

“तो यही है वह गुप्तमार्ग, जिससे द्रविडराज की सेना आई थी”—वह स्वतः ही बढ़बढ़ा उठा और पुनः भाड़ी के बाहर आकर

तीव्र वेग से उस ओर चल पड़ा, जिधर आर्य सम्राट की अगाध सेना का विशाल शिविर उपस्थित था।

अर्द्धरात्रि की बेला में, वह भयानक वन्यप्रदेश पशुओं के चिगघाट से परिपूरित था, परन्तु आर्य सेना रावटियों में पड़ी थी अतीव शान्ति के साथ। समग्र आर्य शिविर में सन्नाटा छाया हुआ था। आर्य-सम्राट की रावटी के द्वार देश पर कई सैनिक पहरा दे रहे थे। आर्य सम्राट, प्रगाढ़ निद्रा में वशीभूत होकर स्वप्न संसार में विचरण कर रहे थे।

एकाएक कुछ खटके का शब्द सुनकर उन्होंने अपने नेत्र खोले। देखा—एक सैनिक खड़ा है।

“क्या है ?”—पूछा आर्य सम्राट ने। सैनिक बोला—“गुप्तचर इस समय द्वार पर उपस्थित है। कहता है, कार्य अत्यन्त आवश्यक है। वह इसी समय श्रीमान् का दर्शनाभिलाषी है...”

आर्य सम्राट आश्चर्य से उठ बैठे—“भेजो उसे !...” उन्होंने सैनिक को आशा दी। सैनिक चला गया। दूसरे ही क्षण गुप्तचर ने उस रावटी में प्रवेश कर आर्य सम्राट को अभिवादन किया—“कार्य अत्यन्त आवश्यक है श्रीमान् !”—

“क्या है... है क्या गुप्तचर !...”

“मैंने वह गुप्तमार्ग देखा है श्रीमान् !...” गुप्तचर घीमी वादी में बोला।

“कौन सा गुप्तमार्ग !...”

“द्रविड सेना के आने का गुप्तमार्ग ! बहुत प्रच्छन्न है, मगर मैंने खोब ही ढाला। श्रीमान् को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि वह गुप्तमार्ग गुज्जान भाड़ियों से आच्छादित एक कन्दरा के रूप में है, जहाँ मानवी नेत्र कदाचित् ही पहुँच सकें....”

“कन्दरा के रूप में !...”

“जी हाँ श्रीमान् !....”

“तब वह गुप्तमार्ग नहीं है। उनके गुप्तमार्ग पर सैनिकों का पहरा होगा”—आर्य सम्राट ने कहा।

“नहीं श्रीमान् ! वहाँ तनिक भी पहरा नहीं है। वहाँ पहरेदार इसलिए नहीं रखे गये हैं, कि पहरा रहने पर सहज ही लोगों को अनुमान हो जायगा कि वहाँ पर कोई गुप्तमार्ग है। आप निश्चित रहिए श्रीमान् ! वही गुप्तमार्ग है। अभी अभी मैं देखकर आया हूँ कि द्रविड शिविर से एक सैनिक कोई सन्देश लेकर उसी गुप्तमार्ग द्वारा राजनगर पुष्पपुर की ओर गया है...”

“तुम्हारा विचार क्या है ?...”

“मेरा विचार यही है श्रीमान् ! कि आप इसी समय चलकर उस कन्दरा द्वार का कुछ दूर तक निरीक्षण कर लें। तब यदि आवश्यक समझें तो अपनी कुछ सेना इस गुप्तमार्ग द्वारा राजनगर पुष्पपुर की ओर भेज दें। ऐसा करने से हमारी विजय निश्चित है...”

“चलो ! चलकर उसे देख लेता हूँ...” आर्य सम्राट् रावटी में बाहर निकले और बिना किमी में एक शब्द कहे हुए गुप्तचर के साथ पैदल ही चल पड़े।

×

×

×

×

जम्बुक आहत था, साथ ही साथ चेतना हीन। सैनिक को गुप्त मार्ग द्वारा अपने पिता के साथ जाने का आदेश देकर युवराज पुनः जम्बुक के उपचार में लग गये। परन्तु वह भयानक बनमानुष शीघ्र ही चैतन्य न हो सका। लगभग अर्द्धरात्रि में जम्बुक की निद्रा भंग हुई। तब तक युवराज जागते रहकर अपने जन्म साथी की सेवा करते रहे। चैतन्यता प्राप्त होते ही जम्बुक ने जो अपनी हथेली खोली, तो रत्नहार को अनुपस्थित देखकर आर्तनाद कर उठा। युवराज उसका तात्पर्य समझ गये। वे बोले—“तेरा रत्नहार सुरक्षित है जम्बुक !...”

जम्बुक ने संतोष की साँस ली, पुनः एक दृष्टि अपने बदन पर बैँधी हुई पट्टी की ओर डाली, तत्पश्चात् निश्चिन्ता पूर्वक खराँटे लेने

लगा। युवराज भी शयनार्थ अपनी शय्या की ओर चले, परन्तु रुक गये एक सैनिक को अपने पास आते देखकर। सैनिक ने युवराज को अभिवादन किया—“श्री युवराज मुझे क्षमा प्रदान करने का कष्ट करेंगे। कार्य इतना आवश्यक एवं शीघ्रता का था कि मुझे इस असमय में श्री युवराज को कष्ट देना पड़ा”—उसने कहा।

“क्या है?...क्या समाचार लाये हो?”—युवराज ने पूछा।

“विकट समाचार है श्री युवराज।” सैनिक ने कहा। युवराज आश्चर्य की भंगिमा बनाकर सैनिक का वह सन्देश सुनने लगे। सैनिक पुनः बोला—“आर्य सम्राट तिग्मांशु अपने एक गुप्तचर के साथ हमारे गुप्तमार्ग की ओर गये हैं। अनिष्ट की महान् आशंका है...”

“गुप्तमार्ग की ओर गये हैं?”—युवराज चौंक पड़े भय एवं आश्चर्य से—“अनर्थ!...तुम धेनुक से कहो, मेरा अश्व ठीक कर दे और स्वयं भी मेरे साथ चलने की अति शीघ्र प्रस्तुत हो जाय...”

सैनिक झपटता हुआ बाहर चला गया। युवराज ने बहुमूल्य सैनिक वस्त्र पहने, कृपाण कटि से लटकाई—पूर्णतया प्रस्तुत होकर वे धेनुक की प्रतीक्षा करने लगे। धेनुक भी शीघ्र प्रस्तुत होकर आ गया। उसने युवराज को अभिवादन किया—“श्री युवराज की आज्ञानुसार सब कार्य परिपूर्ण है...”

“चलो!...” युवराज रावटो से बाहर आये। द्वार पर ही सैनिक दो अश्व लिये खड़े थे। युवराज अपने अश्व पर जा चढ़े। धेनुक अपने अश्व पर आसीन हो गया। तीव्र गति से दोनों अश्व परिलक्षित दिशा की ओर दौड़ चले। युवराज और धेनुक मौन थे। केवल बन-स्थली के भयानक भ्रंभावात का स्वर सुनाई पड़ रहा था।

“आओ, हमलोग दूसरे मार्ग से चलें, ताकि आर्य सम्राट जब तक गुप्त मार्ग के प्रथम भीतरी द्वार के पास पहुँचें, उससे बहुत पहले ही हम वहाँ उपस्थित रहें।” युवराज ने कहा।

“श्री युवराज का विचार बिस्कुल ठीक है”—धेनुक बोला, क्योंकि वह भली प्रकार जानता था कि वहाँ ऐसे कई एक गुप्त मार्ग हैं।

× × × ×

“यह तो कोई कन्दरा है गुप्तचर !”—आर्य सम्राट् बोले—
“परन्तु वास्तव में यह मानवी करो द्वारा ही निर्मित है। ऐसे पाषाण-युक्त, कठोर भूमि को काटकर इतनी प्रशस्त कन्दरा बनाना प्रबल चातुर्य का कार्य है..”

“जी हाँ श्रीमान् !....” गुप्तचर ने कहा। इस समय आर्य सम्राट् एवं गुप्तचर—दोनों उस गुप्त मार्ग द्वारा अग्रसर हो रहे थे। आर्य सम्राट् अपने शत्रु के उस गुप्त मार्ग को तीक्ष्ण दृष्टि द्वारा निरीक्षण करते जा रहे थे एवं उस कन्दरा के निर्माता के कलाचातुर्य पर आश्चर्य प्रकट कर रहे थे। गुप्तचर के हाथों में एक छोटा-सा प्रकाश-पुञ्ज था, जिससे मार्ग-प्रदर्शन में पर्याप्त सहायता मिल रही थी। पहले आर्य सम्राट् को आशा थी कि उस कन्दरा में प्रविष्ट होने पर अवश्य किसी न किसी संकट का वहन करना पड़ेगा, परन्तु यहाँ आते ही, जब उन्होंने गुप्तमार्ग को पूर्णतया निर्जन पाया, तब उन्हें शत हुआ कि उनकी आशंका निर्मूल थी।

आर्य सम्राट् और गुप्तचर क्रमशः आगे बढ़ते हो गये। उन्हें उस गुप्त कन्दरा में अनेकानेक प्रकार के कला कौशल दृष्टिगोचर हुए। उन्होंने उन कलाकौशलों को केवल कलाकार की कला-मात्र ही समझा।

एक स्थान पर आते ही दोनों आश्चर्यचकित-से खड़े हो गये, क्योंकि उनके कानों में अभी अभी ही किसी का गर्जन स्वर गुञ्जित हो उठा था—“सावधान !”

“क्या बात है ?”—आर्य सम्राट् सशंकित स्वर में बोले। उनकी दृष्टि चतुर्दिक घूमी, परन्तु उन्हें किसी मनुष्य की आकृति दृष्टिगोचर नहीं हुई।

“कदाचित् शत्रुओं को हमारे यहाँ आने का समाचार मिल गया”— गुप्तचर ने कहा ।

“परन्तु किसी मनुष्य की आकृति नहीं दिखाई पड़ रही है, तो यह स्वर कहाँ से आया !...” आर्य सम्राट ने पूछा ।

“श्रीमान् को विदित हो कि इन द्रविड़ों का कलाकौशल अपूर्व है । यह कन्दरा भी रहस्यमयी प्रतीत होती है”—

कुछ काल तक नीरवता का अटल साम्राज्य छाया रहा उस गुप्त कन्दरा में । जब बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी कहाँ से किसी शब्द या मनुष्य का आभास न मिला, तो उन्हें विश्वास हो गया कि यह उनके श्रवणों का भ्रम था । यह विचारकर वे पुनः आगे बढ़ने को उद्यत हुए । तत्क्षण ही पुनः कठोर स्वर सुनाई पड़ा—“आर्य सम्राट तिग्मांशु एवं गुप्तचर प्रस्तुत रहें—द्रविड़ सेना के गुप्त संचालक से साक्षात् करने के लिये ।...”

आर्य सम्राट चौंक पड़े—तो क्या द्रविड़ सेना का वह योग्य संचालक इस समय स्वयं उनके समक्ष आया है ?—आर्य सम्राट को कौतूहल हुआ, साथ ही साथ प्रसन्नता भी, यह विचार कर, कि देखें कैसा है वह गुप्त संचालक जिसने स्वयं आर्य सम्राट के युद्ध-कुशल सेनाधिप को भी लज्जित कर दिया है...

न जाने कहाँ से धड़धड़ की ध्वनि सुन पड़ी । आर्य सम्राट को यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि अभी अभी ही वे उस गुप्त कन्दरा की दीवाल में बने हुए जिस द्वार के पास खड़े थे और जिसे उन्होंने कलाकार की कल्पित कला ही समझ ली थी—उसके द्वार विचित्र गति से धड़धड़ करते हुए खुल रहे हैं ।

वह द्वार खुला और वहाँ पर खड़े दृष्टिगोचर हुए धेनुक के साथ स्वयं युवराज नारिकेल ! अपने गुप्तचर के करों में उपस्थित क्षीण प्रकाश के आलोक में आर्य सम्राट युवराज की मुलाकृति देखकर चौंक पड़े—“परिणिक तुम यहाँ !...” उनके मुख से निकला; परन्तु शीघ्र ही जब

उनके नेत्र स्थिर हुए, तो उन्हें विश्वास हो गया कि वह युवक पर्णिक नहीं, वरन् कोई अन्य है।

“द्रविड सेना के अधीश्वर आप से यह जानना चाहते हैं आर्य सम्राट ! कि आपने इस रहस्यमयी कन्दरा में आने का दुस्साहस क्यों किया !” धेनुक ने युवराज की आज्ञानुसार आर्य सम्राट से प्रश्न किया।

“दुष्कर के लिये ही तो दुस्साहस किया जाता है संचालक !”—आर्य सम्राट के उत्तर का लक्ष्य युवराज की ओर था।

“धन्यवाद !...” युवराज बोले—“परन्तु आपका यह दुस्साहस सराहनीय नहीं...”

“तुम्हारा तात्पर्य !”—आर्य सम्राट युवराज से तनिक भी सम्मान के साथ बातचीत नहीं कर रहे थे, क्योंकि उन्होंने उन्हें अब तक केवल संचालक मात्र समझ रखा था—जम्बूद्वीप का युवराज नहीं !

“मेरा तात्पर्य यह है कि यदि श्रीमान् को यह ज्ञात होता कि यह कन्दरा अतीव भयानक एवं दुरूह है, अगर आप यह जानते होते कि इस गुप्तमार्ग का एक एक भाग भयंकर एवं रहस्यमयी कलाओं से परिपूर्ण है—तो कदाचित् आप यहाँ पधारने का दुस्साहस न करते...”

“अभी तुम आर्य-सम्राट के वीरत्व एवं शौर्य को नहीं जान सके हो संचालक !...” आर्य सम्राट ने कहा।

“जान चुका हूँ श्रीमान् !...आर्य सम्राट का वीरत्व एवं शौर्य पिछले कई दिवसों के युद्ध ने मुझपर विदित कर दिया है...”

“वास्तव में तुम्हारी सैन्य-संचालन शक्ति सराहनीय है सेनाध्यक्ष ! तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ”—आर्य सम्राट बोले।

“परन्तु मैं आपकी अवहेलना करता हूँ श्रीमान् ! अपने ऊपर आपका यह अनाचारपूर्ण आक्रमण देखकर”—युवराज ने निर्भय वाणी में कहा। आर्य सम्राट ने क्रोध से दाँत पीसा।—“जबतक वर्तमान युद्ध

का अन्त नहीं हो जाता, तब तक श्रीमान् अपने को बन्दी समझें”—युवराज पुनः संयत बाणी में बोले ।

“बन्दी !...” क्रोध से चिल्ला उठे आर्य सम्राट—“तुम मुझे बन्दी बनाओगे ! इतना साहस !...तुमने मेरा अपमान किया, अब बन्दी बनाना चाहते हो !...एक लुद्र संचालक मात्र होकर एक सम्राट की अवज्ञा कर रहे हो !”

“जिसे आप केवल एक लुद्र संचालक मात्र समझ रहे हैं...” धेनुक बोला—“वे हैं जम्बूद्वीप के भावी सम्राट स्वयं युवराज नारिकेल !...”

“युवराज नारिकेल !...” आर्य सम्राट मानों आकाश से गिरे, क्योंकि युवराज के वीरत्व की गाथा वे मध्य अशान्त महाद्वीप में ही सुन चुके थे । युवराज ने बगल में हाथ बढ़ा कर न जाने कौन सा यन्त्र उमेठा कि कन्दरा के सामने की दीवाल से एक जंगला सर्पिता हुआ आकर दूसरी ओर की दीवाल से जा लगा । बाहर निकलने का द्वार बन्द हो गया । जबतक आर्य सम्राट का हृदय संयत हुआ, तबतक युवराज नारिकेल धेनुक के साथ विलुप्त हो चुके थे । और वह द्वार भी लुप्त था, जहाँ वे लोग खड़े थे ।

× × × ×,

प्रातःकाल पक्षियों का मधुर कलरव दिग्दिगन्तरों में व्याप्त हो उठा । मानव-जगत में नवजीवन का संचार हो गया । जम्बुक के जब नेत्र खुले, उस समय तक भी युवराज धेनुक के साथ लौटे न थे । आँख खुलते ही जम्बुक ने जोरों से अपना शरीर झटक कर रात्रि की व्यग्रता एवं थकावट दूर की । फिर धीरे से उठ खड़ा हुआ । तुरन्त ही उसकी दृष्टि कन्धे के घाव पर बैठी हुई पट्टी पर पड़ी, जिसे स्वयं युवराज ने अपने हाथ बाँधी थी और अपने जन्म-साथी के प्रति अपनी महान् सहानुभूति प्रकट की थी ।

एक झटके के साथ जम्बुक ने वह पट्टी फाड़ डाली । इस समय

उसके अस्तव्यस्त जंगली मस्तिष्क पर न जाने कैसे विचारों का संघर्ष हो रहा था। उसकी मुखाकृति भयानकता धारण किये हुए थी, जिससे प्रतीत होता था, कि अवश्य ही वह अगाध क्रोध के वशीभूत हो रहा है। यद्यपि कन उसके शरीर से अधिक रक्तश्राव हो चुका था, जिससे उसका शरीर शिथिल हो रहा था—फिर भी उसकी आकृति से इस समय यही प्रतीत होता था, मानों कोई भयानक कार्य करने का उसने दृढ़ संकल्प कर लिया हो। वह रावटी से बाहर आया। एक बार उसने अपनी दृष्टि द्रविड़सेना की रावटियों पर डाली, पुनः उस ओर दृष्टिपात किया जिधर योजन भर की दूरी पर पड़ा था आर्य सेना का शिविर। वह न जाने कैसा हो गया था। रह रहकर वह अपना मस्तक पीटने लगता था, मानों अपने छोटे से मस्तिष्क को किसी उलझन के मुल-झाने में तत्पर कर रहा हो। उसने न तो युवराज की खोज की और न तो किसी से कुछ संकेत ही किया, वरन् तीव्रगति से सघन वृक्षों पर से कूदता हुआ उस ओर दौड़ चला जिधर आर्य सेना का शिविर था। न जाने किस दैवी प्रेरणा से वह ऐसा कर रहा था।

जम्बुक के जाने के आधी घड़ी पश्चात् युवराज धेनुक के साथ लौटे। उस समय पूर्वाकाश पर ऊषा की लालिमा नृत्य कर रही थी। आते ही युवराज ने जम्बुक की खोज की, परन्तु यह सुनकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ कि जम्बुक का कहीं पता नहीं है।

× × × ×

रात्रिपर्यन्त पण्डित विविध विचारों में तल्लीन रहा। प्रातःकाल होते ही, जैसे ही वह एक सघन वृक्ष के नीचे आकर वायु-सेवन कर रहा था, कि एक आर्य सैनिक ने आकर निवेदन किया—“सम्राट का कहीं पता नहीं। अर्द्धरात्रि से ही वे लापता हैं। प्रहरी कह रहे हैं कि उन्होंने लगभग अर्द्धरात्रि को एक गुप्तचर के साथ पैदल ही दक्षिण की ओर सम्राट को जाते हुए देखा था।”

पर्णिक पर जैसे वज्राघात हुआ, यह अघटित घटना सुनकर, कल उसका रत्नहार गया और आज स्वयं आर्य सम्राट ?

“तुमने आस पास खोज की ?”—पूछा पर्णिक ने ।

“जी हाँ ! गुप्तचरों ने सन्निकट का सारा बन्ध-प्रदेश छान डाला परन्तु निराशा ही हाथ लगी”—

“अभी तक इस बात को कितने मनुष्य जानते हैं ?”—

“केवल कुछ ही लोग ?”—सैनिक ने उत्तर दिया ।

“देखो ! वह बात फैलने न पावे । नहीं तो आर्य सेना शिथिल पड़ जायगी । तुम युद्ध की तैयारी करो और दुर्मुख को शीघ्र ही मेरे पास भेजो”—पर्णिक ने कहा । सैनिक चला गया । पर्णिक व्यग्रता पूर्वक सघन वृक्ष के नीचे टहलता रहा ।

इस समय उस सघन वृक्ष के हरे पल्लवों के मध्य में छिपा हुआ बनराज जम्बुक पर्णिक की प्रत्येक बातों को सुनकर समझने का प्रयत्न कर रहा था । वह बनमानुष पर्णिक की ही खोज में इस ओर छिपे-छिपे आया था और वहाँ बैठकर यह देखने का प्रयत्न कर रहा था कि यह युवक कौन है ? और वह रत्नहार इसके पास आया कहाँ से ? जिस पवित्र रत्नहार को वह राजमहिषी त्रिधारा के शयन-प्रकोष्ठ से उठा लाकर न जाने किस उपवन में फेंक आया था, उसकी स्मृति वह अब तक भूला नहीं था । वह उसे देखते ही पहचान गया था ।

दुर्मुख आया । वह किरात-नायक पर्णिक का प्रमुख सहायक था—
“क्या है ?”—पूछा उसने ।

“देखो !...” पर्णिक ने कहा—युद्ध का परिणाम भयंकर होता जा रहा है । माता जी से मैं स्वदेश-रक्षा की प्रतिज्ञा करके आया हूँ, परन्तु यहाँ आकर आर्य-सम्राट का सहायक बन बैठा । कितनी बड़ी त्रुटि हुई मुझसे !...कल शत्रु-सेना के एक भयानक बनमानुष ने मेरे गले का वह पवित्र रत्नहार छीन लिया, आज आर्य सम्राट तिर्माश न जाने

कहाँ लुप्त हो गये। मुझे तो ऐसा लग रहा है, कि शीघ्र ही कोई प्रलय-
ङ्कर घटना घटेगी...”

“आर्य सम्राट की सहायता तुम्हें न करनी चाहिये थी नायक !”—

“कैसे न करता दुर्मुख ! अपने पास याचनार्थ आये हुए का तिर-
स्कार कैसे करता !...आर्य सम्राट ने मेरी माता की शिद्दा पर अपशब्द
कहे थे—भला मैं कभी यह सहन कर सकता हूँ कि कोई व्यक्ति मेरी
माता का तिरस्कार करे !... केवल माता जी के सम्मान की रक्षार्थ मैंने
आर्य सम्राट को सहायता देना स्वीकार किया था....”

“तो अब मेरे लिये क्या आज्ञा है ?”—

“तुम अभी इसी समय माता जी के पास जाओ। केवल घड़ी भर
का मार्ग है। उनसे मेरा प्रणाम कहकर यहाँ का समाचार निवेदन कर
देना। वह पवित्र रत्नहार शत्रु सेना के एक बनमानुष के हाथ पड़ गया।
उनसे यह भी पूछ लेना कि अब मेरे लिये क्या आज्ञा होती है ? यथा-
शक्ति अतिशीघ्र आने का प्रयत्न करना। मेरे हृदय में न जाने क्यों
भ्रंशवात-सा मच रहा है—”

दुर्मुख शीघ्र ही अश्वारूढ़ होकर चल पड़ा। वह भीम-काय बन-
मानुष अबतक अतीव ध्यानपूर्वक पर्णिक एवं दुर्मुख की बातें सुन रहा
था। जब दुर्मुख अश्वारूढ़ होकर चला गया एवं पर्णिक भी अपनी
रावटी में आया, तो जम्बुक उस वृक्ष पर से इटा और प्रबल वेग से,
वृक्षों पर कूदता हुआ, दुर्मुख का पीछा किया। इस समय दैवी प्रेरणा
ने उसे न जाने कैसी बुद्धि प्रदान कर दी थी।

दुर्मुख को तनिक भी शक्त न था कि एक विशालकाय बनमानुष
उसका पीछा कर रहा है। दुर्मुख के अश्व से भी तीव्रगति से दौड़ रहा
था वह दुर्दान्त जीव, वृक्षों की शाखा प्रशाखाओं पर !

विद्युत—रेखा के अलौकिक आलोक में मेघाच्छन्न नभ मंडल ने अपना कृष्णकाय भयंकर मुख देखा । चमचम चमकती हुई मणिमाला जैसी तारकावलि ने श्यामल मेघों की क्रीड़ में अपना प्रोज्ज्वल मुख छिपा लिया । प्रबल वेगवान समीरण कर्कश ध्वनि करता हुआ समग्र पुष्पपुर नगरी पर हाहाकार करने लगा । प्रसुप्त संसार इस प्रबल भ्रंभावात से त्रसित एवं व्यग्र होकर इतस्ततः शरण खोजने लगा । मेघावरण से छुन छुनकर आती हुई मुक्तासदृश जल-विन्दुएँ अबाध गति से भूमि का सिंचन करने लगीं ।

वृक्षगण अपनी शाखा-प्रशाखा समेत कम्पित हो रहे थे । हिमराज के सर्वोच्च शिखर पर से आता हुआ प्रबलानिल, मानों मृत्यु का संदेश लेकर द्वार द्वार घूम रहा था । समग्र पुष्पपुर नगरी पर अतुलित वर्षा हो रही थी । उन विन्दुओं के घनघोर रव एवं पिशाचाकार मेघों के प्रलयंकर गर्जन से राजप्रकोष्ठ की दीवालें प्रकम्पित हो रही थीं । महामाया के मन्दिर के स्वर्ण-घंटे वायु का प्रबल वेग पाकर अनोखी गति से हिल पड़ते थे और उनके मुख द्वारा उच्चारित टन्न् टन्न् शब्द रात्रि की विह्वलता में सुदूर तक प्रसारित होकर एक भयंकर भयानकता की सृष्टि कर देता था ।

अर्द्धरात्रि की ऐसी भयानक परिस्थिति में, जब कि पुष्पपुर राज-प्रकोष्ठ के सभी लोग निद्राभूत हो रहे थे एवं महामाया के सुविशाल मन्दिर में भयंकर अन्धकार आच्छादित था, चक्रवाल के प्रकोष्ठ की खिड़की खुली थी और उस पर बैठा हुआ वह अगम कलाकार अपनी कला में तन्मय था । उसके प्रकोष्ठ का द्वार खुला था, जिससे वर्षा के ठंड जलकण आकर उसके शरीर का सम्पर्क कर रहे थे—परन्तु उसे मानों किसी बात की चैतन्यता ही न थी । उसके नेत्रद्वय खिड़की द्वारा बहिर्प्रदेश के घनीभूत अन्धकार में न जाने किसे ढूँढ़ने का ध्यर्थ

प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु केवल नन्हीं नन्हीं जलबिन्दुओं की अनोखी चमक के अतिरिक्त कुछ दृष्टि गोचर नहीं होता था। चक्रवाल के करों में उसकी मुग्धकारी वीणा थी—परन्तु वह नीरव थी। केवल उसकी मधुर स्वर-लहरी द्वारा उत्पादित ये शब्द घोर रव में मिलकर विलीन हुए जा रहे थे—“घन उमड़ घुमड़कर बरस रहे—ये लोचन ‘उन’ बिन तरस रहे।”

चक्रवाल न जाने कब तक अपनी तन्द्रा में तल्लीन रहता, यदि उसे दीपशिखा के कम्पित आलोक में, प्रकोष्ठ के द्वार पर, किसी की छाया न दृष्टि गोचर हुई होती। चक्रवाल का हृदय तीव्र वेग से सिहर उठा—किन्नरी निहारिका को आँखों में जल कण छिपाये अपने द्वार पर खड़े अवलोकन कर। किन्नरी प्रकोष्ठ के भीतर चली आई। अब चक्रवाल ने ध्यानपूर्वक देखा कि किन्नरी का सारा शरीर भीगा है, बूँदों से टप टप जल चू रहा है।

“किन्नरी !...” सशंकित स्वर में बोला चक्रवाल—“कहाँ से आ रही हो तुम !.....”

“राजोद्यान से आ रही हूँ”—किन्नरी ने केवल इतना कहा। चक्रवाल तड़प उठा—“या महामाया !.....तुम क्या करने गई थी वहाँ !.....ऐसी विकट रात्रि में, वर्षा के इस प्रबल वेग में, वायु के इस हाहाकारमय गर्जन में तुम राजोद्यान गई थी !...किस लिये गई थी ! बोलो !...”

“वर्षा के दुखद वातावरण एवं तुम्हारे गायन की असह्य-विह्वलता से व्यथित होकर मैंने सोचा चलकर राजोद्यान में ही हृदय की दारुण ज्वाला शान्त करूँ...”

“वहाँ कैसे शान्त हो सकती थी तुम्हारी दारुण ज्वाला !...कौन बैठा था वहाँ, जो तुम्हारी कला की श्रेष्ठता में तन्मय होकर तुम्हारा गुण-गान करता और तुम भी उसके मधुर वार्तालाप से प्रभावित होकर अपने

हृदय की सारी वेदना चारुचन्द्रिका के कल्लोल में विलीन कर देती !... कौन था वहाँ !...बोलो...!”

“वहाँ उनकी मधुर स्मृति विराजमान है...” किन्नरी ने लुब्ध दृष्टि से देखा चक्रवाल की ओर—“वहाँ के पल्लव में, वहाँ के पाषाणों में, वहाँ के कण-कण में उनकी मधुर ध्वनि गुञ्जरित होती रहती है। जब मैं वहाँ जाती हूँ, तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानों वृक्ष की शाखायें, सरोवर की कुमुदिनियाँ एवं भूमि के रजकण, सब उन्हीं के स्वर में मेरा आह्वान कर रहे हों “कलामयी ! आओ न !”...चक्रवाल जब जब मैं वहाँ जाती हूँ, उस स्थान का मंदिर वातावरण मुझे चकित, लुब्ध एवं द्रवित कर देता है...”

“श्री युवराज के लिये इतनी व्यथित न हो किन्नरी !...अपनी अवस्था पर ध्यान दो। देखो, जब से वे गये हैं, तुम्हारा शरीर सूखकर काँटा हो गया है—तुम्हारे नेत्र अर्धनिशि अश्रुवर्षा करते-करते रक्तवर्ण हो रहे हैं—तुम्हारी देदीप्यमान मुखश्री से हाहाकारमयी करुणा का श्रोत प्रवाहित होता रहता है....अपने को संयत करो निहारिका !...”

“व्यर्थ है चक्रवाल !...हृदय की अगम सुखशान्ति, शरीर का समग्र विश्राम एवं नेत्रों का समस्त आलोक तो ‘उनके’ साथ ही चला गया...”

“तुम्हें हो क्या गया है !...क्या अब वे फिर लौटेंगे नहीं ?... यह सब तुम किन प्रलयंकर विचारों में विदग्ध हो रही हो !...”

“नहीं लौटेंगे चक्रवाल ! मेरा अन्तस्तल कहता है कि अब वे नहीं लौटेंगे, मुझसे छल करके कहीं दूर चल देंगे।.....मैं भयानक अनल में दग्धित हो रही हूँ—यदि एकबार उनके दर्शन कर पाती ?”—निहारिका ने कहा। चक्रवाल ने देखा, निहारिका के नेत्रों में उन्माद के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे।

“तुम्हारी दशा शोचनीय है। तुम अपने प्रकोष्ठ में जाकर विश्राम करो...जाओ !”—चक्रवाल ने किन्नरी का कर पकड़ लिया, परन्तु वह

चौक पड़ा—“यह क्या !...यह क्या अनर्थ कर रही हो निहारिका तुम !...तुम्हारा शरीर इतना तप्त, इतना ऊष्ण है—और तुम यहाँ भीगी हुई खड़ी हो ! जाओ ! जाओ किन्नरी !...”

“रहने दो !...मुझ व्यथिता को यहीं, अपने प्रकोष्ठ के द्वार पर खड़ी रहने दो”—निहारिका बोली—“गाओ चक्रवाल ! कोई अनोखा गीत गाकर यावत् जगत को विह्वल कर दो—मेरे सन्तप्त हृदय को अधिकाधिक सन्तप्त कर दो.....गाओ !....उहूँ ! गाना ही पड़ेगा तुम्हें...”

चक्रवाल की वीणा मधुर स्वर में गुञ्जरित हो उठी । चक्रवाल का सिक्त स्वर धीमी गति से प्रवाहित हो उठा—

व्यथिता बाला के शून्य द्वार, आती समझाने मृदु बयार, कहती बिलखा तन पर फुहार,

सखि ! वे दिन कितने सरस रहे ?

ये लोचन ‘उन’ बिन तरस रहे ॥

उसी समय मृदु बयार का एक मधुर भोंका आया, जिसने प्रकोष्ठ के द्वार पर खड़ी हुई निहारिका के उज्ज्वल तन पर फुहारों की वर्षा कर दी—मानों उसे सचेत करके कह रहा हो—“सखि ! वे दिन कितने सरस रहे !”

एक तीव्र कम्पन स्वर के साथ चक्रवाल की वीणा रुक गई, परन्तु निहारिका के नेत्रों से होते हुए प्रवाहित जलकण न रुके, न रुके !

×

×

×

×

“श्रीसम्राट !...” द्वारपायक ने पुकारा ।

“....” द्रविडराज मौन रहे, मानों उन्होंने कुछ सुना ही न हो ।

“श्रीसम्राट !...” द्वारपायक ने पुनः पुकारा, नतमस्तक होकर । वास्तव में वह एक आवश्यक सन्देश लेकर द्रविडराज के प्रकोष्ठ पर लगभग आधी घड़ी से खड़ा था ।

द्वारपायक की दूसरी पुकार सुनकर सम्राट ने प्रकोष्ठ के द्वार की ओर देखा । द्वारपायक ने नतमस्तक होकर सम्राट को सम्मान प्रदर्शन किया—“द्वारदेश पर युद्ध-शिविर से श्री युवराज का सन्देश लेकर एक सैनिक उपस्थित है और लगभग आधी घड़ी से श्रीसम्राट के आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है”—उसने कहा ।

“आधी घड़ी से !”—द्रविड़राज चौंके—“और तुम अब मुझे सूचित कर रहे हो...!”

“मैं श्रीसम्राट की सेवा में बहुत काल से खड़ा हूँ, परन्तु श्रीसम्राट विचारों में इतने तल्लीन थे कि मेरी पुकार पर ध्यान न दे सके....”

“तुम उसे भेजो !...अभी भेजो !...” सम्राट ने उतावली भरे स्वर में आज्ञा दी । सैनिक आया । उसने सम्राट को सम्मान प्रदर्शन किया ।

“तुम युद्ध-शिविर से आ रहे हो ?...हो न ?...कहो, वहाँ का क्या समाचार है ?...”

“श्री सम्राट के अतुलित प्रताप से सब कुशल है...”

“युवराज तो सकुशल हैं...”

“स्वयं महामाया का चक्र उनकी रक्षा कर रहा है श्री सम्राट !... श्री युवराज को किसी अनिष्ट की आशंका नहीं...”

“युद्ध का क्या समाचार है ?”—

“अब तक तो सभी युद्धों में हमारी विजय हो चुकी है । श्री युवराज की संचालन-शक्ति अद्भुत है । शत्रु भी आश्चर्यचकित हो उठे हैं श्री युवराज का प्रबल प्रताप देखकर...”

अब तक सम्राट की प्रश्नधारा के आगे सैनिक को, न तो युवराज का पत्र देने का ही अवसर मिला था और न तो रत्नहार ही उनके समक्ष उपस्थित कर सका था । जब द्रविड़राज सब प्रकार के प्रश्न पूछकर अपना हृदय शान्त कर चुके तो सैनिक ने उनके सामने युवराज का पत्र और वह रत्नहार रख दिया ।

“यह क्या !....” रत्नहार देखते ही द्रविड़राज इस प्रकार तड़प उठे, जैसे उनके शरीर में प्रखरतर विद्युत की रेखा प्रवेश कर गई हो । उन्होंने भयभीत नेत्रों से उस रत्नहार की ओर देखा, पुनः कम्पित करों द्वारा उठाकर उसे मस्तक से लगाया—“वही पवित्र रत्नहार !... द्रविड़कुल का उज्ज्वल दीपक !...यह कहाँ मिला !...यह विलुप्त रत्नहार कैसे प्राप्त हुआ !...” द्रविड़राज ने उत्सुक नेत्रों से शीघ्रता पूर्वक युवराज नारिकेल का पत्र पढ़ा । उनके हृदय में ध्वंसक संघर्ष मच गया । बहुत वर्षों पूर्व की घटना उनके नेत्रों के सन्मुख तीव्र गति से चित्रित होने लगी । वे बारम्बार युवराज का पत्र पढ़ने एवं उस पवित्र रत्नहार को मस्तक से लगाने लगे । उन्हें तीव्रोन्माद-सा हो गया ।

“यह पवित्र रत्नहार शत्रु-सेना के संचालक के पास से मिला है !”—पूछा उन्होंने ।

“जी हाँ ! किरातों का नायक आजकल आर्य सेना का संचालक है...” सैनिक ने उत्तर दिया ।

“किरातों का नायक !”—बोले द्रविड़राज—“क्या अवस्था होगी उसकी !”

“प्रायः बीस वर्ष !....”

“.....” सम्राट् युगपाणि चौक पड़े, सैनिक का यह उत्तर सुनकर ।

“श्री सम्राट की क्या आज्ञा है !...”

“तुम जाओ, विश्राम करो !”—सम्राट् ने सैनिक को आज्ञा दी । सैनिक अभिवादन कर चला गया । द्रविड़राज ने रत्नखँचित श्वेताम्बर से अपना शरीर आच्छादित किया, पुनः उस रत्नहार को यत्नपूर्वक उस श्वेताम्बर की ओट में छिपाया, तत्पश्चात् महामाया के मन्दिर की ओर महापुजारी के दर्शनार्थ चल पड़े ।

“श्री सम्राट !...” महापुजारी को महान् आश्चर्य हुआ । द्रविड़राज का ऐसे असमय में पदार्पण देखकर, साथ ही चिन्ता हुई श्रीसम्राट्

के मुख पर दुःखिन्ता की रेखायें अवलोकन कर—“पधारिये श्री सम्राट !...” महापुजारी ने कहा । किन्नरी एवं चक्रवाल ने, जो कि इस समय महापुजारी के पास उपस्थित थे, द्रविड़राज को सम्मान प्रदर्शित किया ।

“तुम लोग जाओ !”—सम्राट ने चक्रवाल एवं किन्नरी को आज्ञा दी । उनके स्वर से उनके हृदय का प्रबल उद्वेग प्रवाहित हो रहा था । चक्रवाल एवं किन्नरी उठकर चले गये ।

“श्री सम्राट की मुखराशि मलीन क्यों है !” महापुजारी ने पूछा—“क्या श्री युवराज की चिन्ता श्री सम्राट को उद्वेलित कर रही है, या किसी प्रगाढ़ मानसिक आवेग ने श्री सम्राट के हृदय-प्रदेश में अपना नृत्य प्रारम्भ कर दिया है ?....”

“.....” द्रविड़राज निस्तब्ध रहे । केवल एक बार उन्होंने सिक्त नेत्रों से महामाया की स्वर्ण-प्रतिमा को देखा एवं मन ही मन श्रद्धा तथा भक्ति पूर्वक प्रणाम किया ।

“श्री सम्राट ने मेरी बातों का कुछ भी प्रत्युत्तर देने का कष्ट न किया !”—महापुजारी पुनः पूछ बैठे, परन्तु सम्राट नीरव रहे ।

“चक्रवाल !...” महापुजारी ने पुकारा ।

“चक्रवाल को किस तात्पर्य से बुला रहे हैं ?” सम्राट ने पूछा ।

“श्री सम्राट का हृदय उद्विग्न है—ऐसे समय चक्रवाल की गायन-कला अमूल्य औषधि प्रमाणित होगी...”

“नहीं !...आवश्यकता नहीं !...” द्रविड़राज बोले—चिन्ताजनक समाचार आपके समक्ष सुनाने आया हूँ...”

“वह क्या !...” महापुजारी ने उत्सुक नेत्रों से द्रविड़राज के गम्भीर पीतवर्ण मुखकृति की ओर देखा ।

“युद्ध शिविर से अभी अभी एक सैनिक आया है....”

“क्या समाचार लाया है ?...युद्ध की प्रगति कैसी है ?...”

श्री युवराज तो सकुशल हैं ?...” एक साथ ही महापुजारी ने कई एक प्रश्न कर डाले ।

“युद्ध की प्रगति अनुकूल है, युवराज भी सकुशल हैं .. परन्तु मेरी अवस्था शोचनीय होती जा रही है महापुजारी जी ! दैवी प्रेरणा के सभी कार्य मेरे प्रतिकूल हो रहे हैं । जिन बातों को मैं, सत् मानसिक अशान्ति का निवारण कर, भूलने की चेष्टा करता हूँ, दैव दुर्विपाक से उनके नवीन संस्मरण मेरे समक्ष उपस्थित हो जाते हैं । आप ही बताइये महापुजारी जी ! कि ऐसी शोचनीय अवस्था में मैं किस प्रकार धैर्य धरूँ ?... यद्यपि मैं सम्राट हूँ और एक सम्राट को साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक संयत एवं अधिक सहनशील होना चाहिये मगर सहनशीलता की भी कोई सीमा होती है महापुजारी जी ! जिन जिन असहनीय यातनाओं को मैंने मौन रहकर सहन किया है, वे क्या साधारण थीं ?...”

“श्रीसम्राट का तात्पर्य ?...” महापुजारी ने पूछा ।

द्रविड़राज निस्तब्ध रहे । उनका दाहिना हाथ एक क्षण के लिए उनके श्वेत आवरण के अन्तर्प्रदेश में गया और दूसरे ही क्षण उन्होंने महापुजारी के हाथों पर वह बहुमूल्य रत्नहार निकाल कर रख दिया—
“मेरा तात्पर्य बहुत सरल है महापुजारी जी !—यह !...”

“.....” महापुजारी आश्चर्य से, महान् विस्मय से चीत्कार कर उठे—“वही रत्नहार !... जिसके कारण राजमहिषी त्रिधारा को आबन्ध निर्वासन दंड का भागी होना पड़ा ? वही रत्नहार !... जिसने श्री सम्राट् का संसार विनष्टप्राय कर दिया ? वही...”

“जी हाँ ! वही रत्नहार ! हमारे कुल का उज्ज्वल दीपक !... आज इस अनोखी रीति से हमारे समक्ष पुनः उपस्थित है—अब न जाने क्या अघटित घटने वाला है ?...”

“श्री सम्राट् को यह कैसे प्राप्त हुआ ?...”

“यह किरात नायक के पास मिला है, जो कि वर्तमान युद्ध में

शत्रु सेना का संचालन कर रहा है। एक दिन युद्ध में जम्बुक छीन लाया था उससे। सुनता हूँ नायक की अवस्था केवल बीस वर्ष की है....” द्रविडराज के मुखपर उद्वेग का एकत्रीकरण हो रहा था।

“केवल बीस वर्ष की अवस्था में इतनी बड़ी सेना का संचालन करना असम्भव सा प्रतीत होता है...और किरातों में इतना शौर्य कहाँ कि वे युद्ध के भयानक वातावरण का तीव्र गति के साथ संचालन कर सकें !”—महापुजारी बोले।

“वह किरात नहीं हो सकता महापुजारी जी !....”

“श्रीसम्राट का यह केवल अनुमान मात्र है या दृढ़ विश्वास !...”

“न जाने क्यों हृदय में यह विश्वास सुदृढ़ होता जा रहा है महापुजारी जी !...मेरे अन्तस्थल में न जाने किस प्रकार का कौतूहल-मिश्रित हाहाकार मच रहा है। अब तो असह्य हो गया है—असीम वेदना का भार वहन करना अब मेरे लिए दुष्कर है। मुझे सान्त्वना दीजिये महापुजारी जी !”—द्रविडराज ने दीन वाणी में कहा।

महापुजारी मौन रहे। एक क्षण के लिए उन्होंने नेत्रोन्मिलन करके न जाने क्या सोचा। उनकी गम्भीर आकृति ने घोरतम गम्भीरता धारण कर ली। उनके नेत्रद्वय अरुणिम हो उठे। द्रविडराज स्थिरगति से महापुजारी की उदीप्त आकृति की ओर देखते रहे।

“महामाया जो कुक्कु करती हैं, अच्छा ही करती हैं श्री सम्राट् !”—महापुजारी बोले—“उनके प्रत्येक कार्य में उनकी अगम महिमा अन्तर्हित रहती है। आपको उचित है कि धैर्य धारण कर शान्त रहें। आपको चाहिए कि महामाया का स्मरण कर अपनी सारी मानसिक अशान्ति एवं प्रज्वल्यकर उद्वेग अपने से दूर भगा दें। इसी में आपका कल्याण है...”

“यह असम्भव है महापुजारी जी !”—द्रविडराज व्यथित हो उठे—“मेरी दशा तनिक देखिये। मैं अभाग्य सम्राट् एक साधारण व्यक्ति से भी अधिक सन्तप्त हूँ। ऐश्वर्यवान होकर भी मैंने दुश्चिन्ता में

अपना शरीर बिदग्ध कर डाला है। मेरी सहायता कीजिये महापुजारी जी !....”

“श्रीसम्राट् चाहते क्या हैं !”—महापुजारी ने पूछा। उनके नेत्र सम्राट की मुखाकृति पर जा पड़े—द्रविडराज को ऐसा लगा मानों नेत्रों से दो दाहक ज्वालायें निकल कर उनके अन्तस्तल में प्रविष्ट हो गई हों और अपनी समस्त दाहक शक्ति द्वारा उनके हृदय का रक्त-शोषण कर रही हों।

“मैं एकबार युद्धक्षेत्र में चलकर उस किरात युवक को देखना चाहता हूँ”—द्रविडराज ने कहा।

“इससे लाभ !”—महापुजारी ने पूछा।

“मेरे हृदय में.....”

“आप के हृदय में ममत्व का शोर मच रहा है श्री सम्राट् !”—महापुजारी कठोर स्वर में बोले—“सम्राट् होकर भी आप अपने हृदय पर नियन्त्रण नहीं रख सकते !...”

“मैं सम्राट् नहीं, एक सन्तप्त व्यक्ति हूँ महापुजारी जी ! मैं दैवी प्रेरणा द्वारा घोर विपत्ति सहन करने को बाध्य किया हुआ एक दयनीय प्राणी हूँ। मेरी अवस्था पर दया कीजिये—अब तक आपकी समस्त आशाओं का पालन मैंने किया है, आज मेरे इस क्षुद्र अनुरोध का तिरस्कार आप न करें...”

“श्रीसम्राट् !...”

“अधिक बिलम्ब होने से सम्भव है कोई बहुत बड़ा अनिष्ट हो जाय। न जाने क्यों मेरा हृदय तीव्र वेग से प्रकम्पित हो रहा है...”

“चलिये ! मैं युद्ध शिविर में चलने को प्रस्तुत हूँ”—महापुजारी बोले—“गुप्तमार्ग द्वारा चलने से हमलोग तीसरे प्रहर तक युद्ध शिविर में पहुँच जायँगे...” महापुजारी उठे; अपने प्रकोष्ठ से अपना पीताम्बर लेकर कंधे पर रखा, और तीव्र वेग से सम्राट् के साथ बाहर हो गये।

×

×

×

“किन्नरी !...” चक्रवाल ने पुकारा, परन्तु कुछ उत्तर न मिला । चक्रवाल ने प्रकोष्ठ के बन्द द्वारपर कई थपकी दी परन्तु भीतर से कुछ भी उत्तर न आया । चक्रवाल को आश्चर्य हुआ एवं भय भी । न जाने प्रकोष्ठ के भीतर किन्नरी क्या कर रही हैं ?

“किन्नरी !...निहारिका !...” चक्रवाल ने पुनः कई बार पुकारा —परन्तु उत्तर न आया, न आया । चक्रवाल का हृदय आशंका से से भर गया । वह किन्नरी के प्रकोष्ठ की छोटी-सी खिड़की के नीचे आया । खिड़की के कपाट बन्द थे, परन्तु तनिक सा धक्का देते ही खुल गये । उसने खिड़की द्वारा प्रकोष्ठ के भीतर झाँका । देखा, किन्नरी निहारिका अस्तव्यस्त सी पलंग के छोर पर पड़ी हैं—उसके नेत्र बन्द हैं, कपोलों पर मुक्ता सदृश्य अश्रुविन्दु झलक रहे हैं ।

“निहारिका...” चक्रवाल ने तीव्र स्वर में पुकारा । निहारिका निःशब्द रही, केवल उसका शरीर एक बार मधुर गति से प्रक्षिप्त हो उठा एवं उसके श्यामल कुन्तलपाशों की एक रेखा वायु का सम्पर्क कर उसके आरक्त कपोलों पर आ रही ।

“द्वार खोलो !...कब से खड़ा पुकार रहा हूँ...”

“.....” अब निहारिका ने धीरे से अपना मस्तक उठाकर खिड़की की ओर देखा । चक्रवाल को महान् आश्चर्य हुआ, किन्नरी की दयनीय दशा देखकर । निहारिका के नेत्र रुदन करते करते एकदम रक्तवर्ण हो रहे थे ।

“तुम रो रही हो !...रो रही हो तुम !...मैं एक आवश्यक सन्देश लेकर कब से तुम्हारे द्वार पर खड़ा हूँ, और तुम रो रही हो ?”—

“क्या करूँ चक्रवाल !—सब कुछ तो खो चुकी हूँ उस देव की मधुस्मृति में, ये अश्रुक्षण ही शेष हैं—दुख के साथी ! इन्हें कैसे खो सकती हूँ !...” किन्नरी ने शिथिल पैरों से आगे बढ़कर द्वार खोला । चक्रवाल भीतर प्रविष्ट हुआ ।

युद्ध शिविर से कोई भयानक समाचार आया है”—चक्रवाल ने कहा ।

“भयानक समाचार !...कौन सा !...”

“पता नहीं ! परन्तु सुना है कि युद्धक्षेत्र से एक सैनिक आया था । देखा नहीं, जब हम तुम महापुजारी जी के पास बैठे थे—तो श्रीसम्राट् ने, कैसी उदीप्त भंगिमा धारण किये हुए पदार्पण किया था...”

“महामाया ! क्या होनेवाला है ?”—किन्नरी बोली—“मैं मरण-नृत्य करना चाहती हूँ चक्रवाल !...मुझे कुछ ऐसा विश्वास हो गया है कि श्री युवराज कदाचित् अब...”

“कैसी बातें करती हो !....” चक्रवाल ने मधुर झिड़की दी—“महापुजारी जी एवं श्रीसम्राट् मैं बहुत काल तक वार्ता-जाप होता रहा था । अन्ततोगत्वा दोनों व्यक्ति गुप्त मार्ग द्वारा युद्ध शिविर की ओर गये हैं...”

“युद्धशिविर की ओर !....” सिहर उठी निहारिका—“अवश्य चिन्तनीय समाचार रहा होगा ।...मुझे ले चलो चक्रवाल ! मैं भी युद्धशिविर की ओर चलना चाहती हूँ....चलो, बिलम्ब न करो...उनपर न जाने क्या व्यतीत होता होगा !...”

“गुप्त मार्ग द्वारा श्रीसम्राट् एवं महापुजारी जी ने प्रस्थान किया है—हम लोग कैसे चलेंगे !...”

“कोई द्रुतगामी रथ प्रस्तुत करो चक्रवाल !...मेरी अवस्था पर दया करो...”

“मैं अभी व्यवस्था करता हूँ”—तीव्रगति से चक्रवाल किन्नरी के प्रकोष्ठ से बाहर हो गया ।

लगभग घड़ी भर पश्चात् घनघोर बनस्थली को भेदन करता हुआ एक द्रुतगामी रथ हवा से बातें करता दौड़ा जा रहा था । चालक के स्थान पर स्वयं चक्रवाल विराजमान था एवं रथ के अन्तर्प्रदेश में

आसीन थी सौन्दर्यराशि किन्नरी निहारिका ! चक्रवाल का मधुर स्वर
अलाप रहा था—

जो केलिकुञ्ज में तुमको, कंकड़ी उन्होंने मारी ।

क्या कसक रही वह अब भी, तेरे घर में सुकुमारी ॥



पर्णिक की माता अपने भोंपड़े में, किसी आवश्यक कार्य में व्यस्त
थी । उस समय भोंपड़ी के द्वार पर से किसी ने पुकारा—“माता
जी !...”

पर्णिक की माता दर्ष से विह्वल हो दौड़ पड़ी भोंपड़ी के द्वार की
ओर । उसे ऐसा लगा, मानों स्वयं पर्णिक युद्ध क्षेत्र से लौट आकर
स्नेहमयी वाणी में उसे पुकार रहा हो—परन्तु द्वार पर दुर्मुख को खड़े
देखकर उसका हृदय धड़क उठा ! पर्णिक का भेजा हुआ दुर्मुख अभी
अभी ही वहाँ पहुँचा था, मगर अब भी उसे यह तनिक भी पता न था
कि उसका पीछा करता हुआ शत्रु का वह विकराल बनमानुष वहाँ आ
पहुँचा है और इस समय एक सघन वृक्ष की छाया में अपना दीर्घाकार
शरीर छिपाये हुए अतीव ध्यान पूर्वक पर्णिक की माता की ओर देख
रहा है ।

“दुर्मुख तुम !...” पर्णिक की माता साश्चर्य बोली—“युद्ध क्षेत्र
से आ रहे हो न ?...पर्णिक सकुशल तो है !...”

“हाँ माता जी !...” दुर्मुख ने उत्तर दिया—“पर्णिक सकुशल
हैं...युद्ध की प्रगति इधर कुछ ही दिवसों से बढ़ी भयंकरता धारण करती
जा रही है । यदि युद्ध का प्रवाह इसी प्रकार भयावह गति से प्रवाहित
रहा, तो हमारी पराजय निश्चित है....”

“आर्य सम्राट् की सेना अधिक बलशाली है क्या !...”

“आर्य सम्राट् की सेना !...” चौंका दुर्मुख । एक क्षण तक चुप रहकर उसने न जाने क्या सोचा । तुरन्त ही उसे ध्यान हो आया कि अभी तक पर्णिक की माता यही समझ रही है कि पर्णिक की किरात-सेना स्वदेश की रक्षार्थ आर्य सम्राट् से युद्ध कर रही है । अभी तक उसे इस बात का तनिक भी आभास नहीं मिला है कि उसका पुत्र पर्णिक इस समय आर्य सम्राट् की सहायता कर रहा है—“नहीं माता जी !...हम लोग आर्य सम्राट् से युद्ध नहीं कर रहे हैं...” दुर्मुख ने कहा ।

“आर्य सम्राट् ने युद्ध नहीं कर रहे हो ?”—आश्चर्यचकित हो उठी पर्णिक की माता—“तब क्या कर रहे हो ?”

“उनकी सहायता !...” दुर्मुख बोला ।

“आर्य सम्राट् की सहायता कर रहे हो तुमलोग ?” तड़प उठी वह—“जो उतनी दूर से तुम्हारा संसार नष्ट करने आया, उसी की सहायता कर रहे हो, दुर्मुख !...अपने प्राचीन गौरव का तिस्कार कर विदेशीय सत्ता को प्रभावान्वित करना चाहते हो तुमलोग !...क्या पर्णिक की सम्मति से यह सब कार्य हुआ है ?”

“हाँ माता जी ! उनकी पूर्ण सम्मति है !”—दुर्मुख पर्णिक की माता का उग्ररूप देखकर भयभीत हो गया था ।

“पर्णिक इतना निकृष्ट कैसे हो गया ? मेरी उत्कृष्ट शिक्षा को उसने एकदम से विस्मृत कैसे कर दिया !...”

“माता जी ! प्रथम पर्णिक आर्य सम्राट् की सहायता करने को सहमत नहीं थे, परन्तु स्वयं आर्य सम्राट् ने उनके पास आकर सहायता की याचना की...”

“सहायता की याचना की !...और पर्णिक ने उन्हें सहायता देना स्वीकार कर लिया—क्यों !...”

“नहीं उन्होंने फिर भी अस्वीकार कर दिया । तब आर्य सम्राट्

आपका अपमान करने लगे—क्या तुम्हारी माता ने तुम्हें यही सिखाया है कि अपने चरणों में आये हुए भिक्षुक को ठुकरा दो !....”

“.....” चौक पड़ी पर्णिक की माता, अपनी शिखा का तिरस्कार सुनकर । साथ ही चौक पड़ा जम्बुक भी, जो इस समय सघन वृक्ष की ओट में छिपा हुआ एकटक पर्णिक की माता की ओर देख रहा था । उसकी मुखाकृति क्षण-क्षण में परिवर्तित हो रही थी । ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह किसी उथल-पुथल के वशीभूत हो रहा हो ।

“इसी प्रकार आर्य सम्राट ने अन्य बहुत-सी बातें कहकर तुम्हारी शिखा का अनादर किया । पर्णिक को बहुत क्रोध आया । उन्होंने आर्य सम्राट को द्वन्द युद्ध में पराजित कर तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध लिखा तत्पश्चात् तुम्हारे सम्मान की रक्षार्थ उन्होंने आर्य सम्राट को सहायता देना स्वीकार कर लिया....”

“मेरे सम्मान की रक्षार्थ !...” पुलकित हो उठी वह, परन्तु दूसरे ही क्षण उनकी मुखाकृति परिवर्तित हो गई—“मेरे सम्मान की रक्षार्थ उसने एक विदेशी की सहायता करना स्वीकार कर लिया, मेरे सम्मान की रक्षार्थ उसने नायक की जिह्वा काटी, मेरे सम्मान की रक्षार्थ उसने सब कुछ कर डाला—परन्तु अपनी जन्म भूमि के सम्मान की रक्षार्थ उसने क्या किया !...” आवेश में रो पड़ी वह—“एक लुट्टा जननी के लिए उसने इतना किया, तो क्या जननी जन्मभूमि के लिए उसने प्राणों को उत्सर्ग करना आवश्यक नहीं समझा ! जन्मभूमि के सम्मान से बढ़कर क्या मेरा अपमान होगा !...ओह दुर्मुख ! क्या किया तुम लोमों ने !...क्या यही है तुमलोगों का प्रबल उत्साह !...”

वृक्ष की ओट में छिपे हुए उस भयानक बनमानुष के नेत्रों में आँसू आ गये थे—न जाने क्यों !—परन्तु अब भी वह पर्णिक की माता को ही देख रहा था ।

“आज कई दिनों से हमारी पराजय हो रही है । आर्य सम्राट् की अगाध सेना को शत्रु की एक तुच्छ सेना शिथिल करती जा रही है ।

स्वयं पर्णिक, जो कि आजकल आर्य सेना के प्रमुख संचालक हैं, अत्यधिक आश्चर्यचकित हो उठे हैं !...कल युद्ध में एक अघटित घटना घट गई, जिसके लिए मुझे यहाँ तक आना पड़ा...”

“कौन सी घटना !”

“कल दिवस काल में, जब कि युद्ध भयानक गति पर था, शत्रु सेना के एक विकराल बनमानुष ने पर्णिक के गले से आपका रत्नहार छीन लिया और भाग गया...”

“बनमानुष ने छीन लिया !—” आश्चर्य एवं उद्वेग से चीत्कार कर उठी वह—“कहाँ का था वह बनमानुष !...”

“शत्रु सेना का था वह !...सुना था कि वह उनके साथ बहुत दिनों से रहता आ रहा है...”

जम्बुक अपने को सम्हाल न सका । उसे न जाने क्या हो गया था । वह तीव्र वेग से वृद्ध के नीचे कूद पड़ा एवं दौड़ चला उस ओर जिधर पर्णिक की माता खड़ी हुई दुर्मुख से बात कर रही थीं । दोनों ने उस भीमकाय बनमानुष को देखा । दुर्मुख तो भय से आर्तनाद कर दूर हट गया, परन्तु पर्णिक की माता अपने स्थान पर निश्चल खड़ी रही, उस बनमानुष की ओर आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से देखती हुई । जम्बुक पास आ गया, उसके मुख से हर्ष की भयानक किलकार निकल पड़ी और वह धड़ाम से पर्णिक की माता के चरणों पर गिर कर लोटने लगा । पर्णिक की माता के नेत्र अभ्रुवर्षा से सिक्त हो उठे । उन्होंने झुककर बनमानुष को उठाना चाहा, परन्तु वह तो उनके पगों से ऐसा लिपट गया था, कि जैसे जन्म जन्मान्तर तक वह यों ही उन चरणों में सुषुप्त रहेगा ।

“जम्बुक !...तू यहाँ कहाँ !...” पर्णिक की माता ने दयार्द्र स्वर में पुकारा ।

“.....” जम्बुक के मुख से तीव्र जंगली स्वर निकला । बड़े प्रयत्न से पर्णिक की माता ने उसे भूमि पर से उठाया । इस समय अभ्र

के प्रबल वेग से जम्बुक का सारा मुख भीग गया था ! उसने पण्डिक की माता को पहचान लिया था ।

“तू कहाँ से आ गया जम्बुक !...” पण्डिक की माता ने अपनी आँखें पोंछी । जम्बुक इषोत्फुल्ल हो चीत्कार करता हुआ कभी उनके चरण चूमने लगता था और कभी डघर-उधर दौड़कर नृत्य करने में तल्लीन हो जाता था ।

दुर्मुख आश्चर्यचकित था, उस बनमानुष से पण्डिक की माता का परिचय देखकर । वह साहस कर पण्डिक की माता के कुछ सन्निकट आया—“माता जी...” उसने पुकारा ।

“कहो.....”

“यही वह बनमानुष है !...”

“कौन बनमानुष ?”—पण्डिक की माता को आश्चर्य हुआ ।

“जिसने पण्डिक का रत्नहार अपहरण किया था...” दुर्मुख के मुख से अस्तव्यस्त शब्द निकल पड़े ।

“यही है वह ?...”

“जी हाँ, शत्रु सेना का वह बनमानुष यहीं है !” दुर्मुख बोला ।

“शत्रु सेना का बनमानुष !...आजकल आर्य-सेना किससे युद्ध कर रही है ?...”

“द्रविडराज से !...”

“द्रविडराज से !...द्रविडराज से युद्ध हो रहा है !...और पण्डिक उनके विरुद्ध आर्य सेना का संचालन करता है !”—घड़ाम से गिर पड़ी वह भूमि पर । उनके नेत्रों के समक्ष अन्धकार का साम्राज्य छा गया उनके अन्तस्थल में हाहाकार मय कोलाहल मच गया—“महामाया !... यह सब क्या हो रहा है !...आज बीस वर्षों के पश्चात् अबकौन-सा दृश्य समुपस्थित होना चाहता है !...”

दुर्मुख ने उन्हें उठाया और सान्त्वना दी—“क्या है माता जी !...आप इतनी उद्विग्न क्यों हो गयीं !...”

“प्रलय का आवाहन कर अब पूछ रहे हो मेरी उद्विग्नता का

कारण ! मेरे हृदय के शतशः खण्ड करके अब चाहते हो सान्त्वना देना !...”

“माताजी ! यदि कोई अपगन्ध हुआ हो, तो उसका मैं समुदाय की ओर से क्षमाप्रार्थी हूँ । अब जो आपकी आज्ञा हो, उसके अनुसार कार्य करने को हम प्रस्तुत हैं...”

“आज्ञा !...” एक क्षण तक कुछ सोचा पर्णिक की माता ने—“मैं इसी समय युद्धक्षेत्र को प्रस्थान करना चाहती हूँ... हैं ! यह क्या ! मेरी दक्षिण भुजा के फटने का कारण !... दुर्मुख ! कोई घोरतम अनिष्ट सन्निकट है । तुम एक द्रुतगामी अश्व अभी लाओ । मैं जम्बुक के साथ इसी समय युद्धक्षेत्र को प्रस्थान करूँगी, नहीं तो अनर्थ हो जायगा, प्रलय मंच जायगा...”

“इस बनमानुष के साथ...”

“तुम्हें आश्चर्य होता है !....यह बनमानुष जितनी कुशलता पूर्वक द्रुतगति के साथ अश्व का संचालन कर सकता है, उतनी गति के साथ कदाचित् तुम भी न कर सको...आओ ! विलम्ब न करो !...”

दुर्मुख दौड़ गया और कुछ ही देर में एक अश्व लिए हुए आ उपस्थित हुआ । पर्णिक की माता ने कहा—“जम्बुक ! मैं रणक्षेत्र को चलना चाहती हूँ । मुझे जल्दी से जल्दी ले चलो !...”

वह विशालकाय बनमानुष अश्व के सन्निकट आ खड़ा हुआ । उसने अपने भारी हाथों द्वारा अश्व की पीठ थपथपाई, पर्णिक की माता को सहारा देकर अश्व की पीठ पर चढ़ाया, पुनः उछलकर आप भी सवार हो गया । जम्बुक के सुदृढ़ छोटे पैर का संकेत पाकर वह द्रुतगामी अश्व तीव्र गति के साथ भाग चला । दुर्मुख आश्चर्य विस्फारित नेत्रों द्वारा उस दुर्दान्त जीव का प्रशंसनीय कार्य देखता रहा ।

×

×

×

×

“अब क्या होगा गुप्तचर ?”—उस गुप्त कन्दरा में असहाय अवस्था में पड़े हुए आर्य-सम्राट् अपने गुप्तचर से कह रहे थे—“कई प्रहर

हो गये । हम लोग ऐसे बुरे फँसे कि बाहर निकलने का कोई मार्ग ही नहीं रह गया ! शत्रुओं ने दोनों ओर से मार्ग बन्द कर दिया । अब हम इसी कन्दरा में शोक जनक मृत्यु को प्राप्त होंगे । युद्ध का न जाने क्या समाचार होगा ! मेरे एकाएक विलुप्त हो जाने से पर्णिक न जाने क्या सोचेगा ! सेना तो एकदम शिथिल पड़ गई होगी...”

“नहीं जानता था कि इस गुप्त कन्दरा में इतना रहस्य प्रच्छन्न है, नहीं तो श्रीमान को मैं कभी यहाँ आने की सम्मति न देता”—गुप्तचर ने कहा ।

“हमारी सारी आशाओं पर तुषारापात हो गया, हमारी सभी अभिलाषायें धूल-धूसरित हो गईं”—आर्य सम्राट् हताश वाणी में बोले ।

×

×

×

×

“मुझे दृढ़ विश्वास है महापुजारी जी !”—द्रविडराज ने कहा । द्रविडराज एवं महापुजारी पौत्तालिक तीव्र गति से गुप्तमार्ग द्वारा युद्ध शिविर की ओर अग्रसर हो रहे थे । उस गुप्तमार्ग में प्रकाश आने की पूर्ण व्यवस्था थी । इस समय दिन होने के कारण कन्दरा में मद्धिम प्रकाश फैल रहा था ।

“महामाया करें आपका अनुमान सत्य हो श्रीसम्राट् !”—महापुजारी बोले ।

“मेरे हृदय में ममत्व का दारुण शोर मच रहा है, अवश्य मेरा अनुमान सत्य होगा”—द्रविडराज ने कहा । दोनों व्यक्ति मौन धारण किये हुए अग्रसर होने लगे । इस समय द्रविडराज की विचित्र दशा थी । उसके हृदय में हास्य एवं रुदन दोनों की उद्भूति हो रही थी । कभी वे चाहते थे कर्ण चीत्कार करना, और कभी चाहते थे हर्षातिरेक से हास्य कर उठना । अब इतने दिनों की शोकाग्नि के पश्चात् शान्ति का अनिल मिला था, परन्तु उन्हें क्या शान्ति थी कि दैवी-चक्र अब भी उनके सर्वथा प्रतिकूल कार्य कर रहा है ।

“वह क्या !...” द्रविडराज एकाएक आश्चर्य चकित हो उठे, सामने के सुविशाल फाटक को बन्द देखकर—“यह द्वार किसने बन्द किया !...क्या यहाँ कुछ बाहरी मनुष्य भी उपस्थित हैं...”

“हो सकता है कि श्री युवराज ही ने इसे बन्द किया हो”—महा-पुजारी बोले । द्रविडराज ने हाथ बढ़ाकर उस विशाल फाटक के बगल में न जाने क्या किया । दूसरे ही क्षण वह फाटक धड़ाधड करता हुआ खुल गया । द्रविडराज एवं महापुजारी, दोनों व्यक्ति चौंक पड़े, सुरंग में दूर पर दो मनुष्यों की स्पष्ट आकृति अवलोकन कर ।

“कौन है !...कौन है, जो अपने को द्रविडराज की क्रोधाग्नि से भस्म करना चाहता है !” द्रविडराज का कठोर गर्जन गूँज उठा, उस गुप्त सुरंग में ।

“मैं हूँ !...आर्य सम्राट् तिग्मांशु !...यहाँ !”....द्रविडराज आश्चर्य से अधीर हो उठे । उन्होंने महापुजारी की ओर देखा और महापुजारी ने उनकी ओर । दोनों व्यक्ति उस ओर बढ़े, जिधर आर्य सम्राट् एवं गुप्तचर खड़े हुए स्वयं द्रविडराज के पदार्पण पर आश्चर्य प्रकट कर रहे थे ।

दोनों महान् सम्राट् एक दूसरे के समक्ष आ खड़े हुए । दोनों ने अपनी प्रथनुसार एक दूसरे को अभिवादन किया । तत्पश्चात् द्रविडराज बोले—“आर्य सम्राट् से साक्षात् कर मैं अतीव प्रसन्न हुआ !...”

“मेरा अहोभाग्य कि श्रीमान् के दर्शन मिले !”—कहा आर्य सम्राट ने ।

“मगर आर्य सम्राट के यहाँ पधारने का कारण !”—महापुजारी ने पूछा ।

“हम बन्दी हैं !...”

“बन्दी !...बन्दी हैं आप !”—द्रविडराज बोले—“किसने बन्दी बनाया आपको !...”

“स्वयं युवराज नारिकेल ने !”—आर्य सम्राट् ने उत्तर दिया ।

“युवराज नारिकेल !...” द्रविडराज के मुख पर घृणा का भाव लक्षित हो उठा—“तनिक भी सभ्यता नहीं उसमें ! एक सम्राट के साथ ऐसा दुर्व्योहार ! एक वीर के साथ ऐसा कटु परिहास !...”

“परन्तु अपराध मेरा ही था श्रीमान् ! मैं ही आपके इस गुप्तमार्ग का पता लगाने आया था...”

“आपने अपराध किया था—परन्तु दुर्व्योहार उसका दण्ड नहीं हो सकता । अपने घर में आये हुए शत्रु से मित्र का सा आचरण करना ही द्रविड कुल की सभ्यता है आर्य सम्राट् !....”

“यहाँ आपके इस असमय में कष्ट उठाने का कारण !...”

“यही बात मैं आप से पूछना चाहता हूँ—जम्बूद्वीप पर आपके इस असमय में आक्रमण का कारण !....” द्रविडराज के स्वर में तीव्रता थी ।

“यह आक्रमण नहीं था श्रीमान् ! यह केवल भिक्षा थी...”

“भिक्षा !”—आश्चर्य चकित होकर पूछा द्रविडराज ने ।

“जी हाँ ! भिक्षा थी यह ! अपनी सभ्यता एवं धर्म के प्रसार के हेतु !...परन्तु आपने अपने द्वार पर आये हुए भिक्षुक का तिरस्कार कर दिया द्रविडराज !...”

“आप भिक्षुक हैं आर्य सम्राट् !...आपने मुझसे भिक्षा की याचना की थी !...यदि ऐसा हुआ होता, तो द्रविडराज इतने नीच नहीं थे, कि....क्या आप की सभ्यता में इसको भिक्षा कहते हैं ? क्या आपके धर्म का यही आदेश है कि जो भिक्षा न दे, उस पर बल-प्रयोग करें...”

“.....” आर्य सम्राट् निस्तब्ध रहे ।

“आप कहते हैं, आप ने भिक्षा माँगी थी !...क्या भिक्षा दूत भेजकर माँगी जाती है और दूत के मुख से यह कहला दिया जाता है कि भिक्षा न देने पर बलपूर्वक अपहरण कर लिया जायगा...यदि आप

को भिक्षा माँगनी थी, तो आप को उचित था कि आप स्वतः हमारे समक्ष उपस्थित होते और महापुजारी जी के चरणों पर मस्तक रखकर दया की भिक्षा माँगते। यदि महापुजारी जी का दयार्द्र हृदय आपकी पुकार पर द्रवित होता, तो मैं उनकी आज्ञानुसार अपना सारा साम्राज्य आपके चरणों पर अर्पित कर देता...”

“अबतक मैंने इसी रूप से कार्य किया है” आर्य सम्राट् बोले।

“ओह !...” हँस पड़े द्रविड़राज—“आप ने सोचा था कि जिस प्रकार अन्यमाण्डलिक राजाओं ने आपका आधिपत्य स्वीकार कर लिया है, उसी प्रकार द्रविड़राज भी कर लेंगे। यह नहीं समझा था आपने, कि द्रविड़राज का आत्मसम्मान इतना हेय नहीं है। आपने बलप्रयोग की धमकी दी थी—आज हम दोनों का साक्षात् हो गया है। हमलोग आज निश्चय कर लेंगे कि कौन किस पर बल प्रयोग कर सकता है...”

“आर्य सम्राट् का कृपाण विपक्षी के मस्तक पर अपमान करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहता है श्री मान् !”—आर्य सम्राट् ने कहा।

“धन्यवाद !...” द्रविड़राज बोले—यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं है—मेरे साथ आइये !...” द्रविड़राज आगे बढ़ चले। एक स्थान पर सुरंग बहुत प्रशस्त थी। वहीं सब आकर रुक गये। द्रविड़राज एवं आर्य सम्राट् ने अपने अपने कृपाण सम्हाल लिये। दोनों विकट प्रतिद्वन्दी एक दूसरे के समक्ष खड़े होकर घात-प्रतिघात करने में तल्लीन हो गये। कृपाणों के भयानक झुनाटे से वह गुप्तमार्ग गुञ्जरित होने लगा।

यह पर्णिक के ही बुद्धिचातुर्य का कार्य था, कि आर्यसेना अब तक युद्ध में ठहरी हुई थी। आर्यसम्राट तिग्मांशु का विलुप्त होना अत्यन्त सावधानतापूर्वक गोपनीय रखा गया था। केवल दो चार गुप्तचरों एवं स्वयं पर्णिक के अतिरिक्त आर्य सेना का अन्य कोई भी व्यक्ति आर्य सम्राट के विलुप्त होने की बात न जानता था। इस समय भी आर्य सेना पूर्ण वेग के साथ युद्ध करने में तत्त्वीन थी। समरांगण में रक्त की प्रबल सरिता प्रवाहित थी। प्रत्येक सैनिक अपने विपक्षी पर विजय पाने की आशा से तीव्र गति से अग्र चला रहा था। एक सुन्दर अश्व पर आसीन पर्णिक अतीव चतुरतापूर्वक आर्य सेना का संचालन कर रहा था। द्रविड़ सेना का नामधारी संचालक धेनुक क्रोधोन्मत्त होकर तीव्र कृपाण से शत्रु सेना का मान मर्दन कर रहा था। उसका अतुलित पराक्रम देखकर द्रविड़ सैनिक उत्साहित होकर शत्रुओं पर प्रबल आक्रमण कर रहे थे।

पर्णिक को महान् आश्चर्य हुआ, द्रविड़ों की उस छोटी-सी सेना को अग्राध आर्य सेना से सफलतापूर्वक युद्ध करते हुए अवलोकन कर। साथ ही उसे क्रोध भी हो आया, धेनुक का संहारण कार्य देखकर। वह तीव्र गति से धेनुक के समक्ष आ रहा—“सावधान ! विपक्षी के संचालक !” उसने गर्जन किया।

“आर्य सेना के संचालक को विदित हो...” धेनुक बोला—“कि मुझ जैसे क्षुद्र सैनिक को संचालक कहकर उन्होंने उस महान् व्यक्ति का अपमान किया है, जो कि द्रविड़-सेना का वास्तविक संचालक है... धेनुक इस अपमान का प्रतिशोध लेने को तत्पर है....”

“आ जाओ ! आज पर्णिक का भी हस्तकौशल देख लो... मैं देखना चाहता हूँ कि द्रविड़-सेना का वह गुप्त संचालक है कौन ! मैं प्रण करता हूँ कि आज मैं इस प्रकार का युद्ध करूँगा कि बाध्य होकर उस गुप्त संचालक को युद्धभूमि में आना पड़ेगा...”

अपनी रावटी में बैठे हुए युवराज नारिकेल सैनिक द्वारा लाये हुए युद्ध के समाचारों की प्रतिक्षण सुन रहे थे एवं उन्हें आवश्यक आज्ञा देकर पुनः रणक्षेत्र की ओर भेज रहे थे; परन्तु उनका हृदय आज न जाने क्यों अत्यधिक व्यग्र था। जम्बुक के इस अनोखी रीति से भाग जाने से उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था। आज तक उस दुर्दान्त बनमानुष ने अगणित कष्टों के समय उनकी प्राण रक्षा की थी—आज किस कारण से उन्हें वह ऐसी भयंकर परिस्थिति में त्यागकर चला गया ?

“पता लगा !”—युवराज ने उस सैनिक से पूछा।

“नहीं श्री युवराज ! हमने पार्श्व की बनस्थली का प्रत्येक भाग छान डाला, परन्तु जम्बुक का कहीं पता नहीं लग सका...” सैनिक बोला।

हताश युवराज ने अपना मस्तक पकड़ लिया, परन्तु दूसरे ही क्षण उनका ध्यान भंग हो गया—युद्धभूमि से आये हुए एक सैनिक का आर्तनाद सुनकर—“अनर्थ !...प्रलय !...विनाश !...” उस सैनिक के मुख से स्पष्ट स्वर नहीं निकल रहा था।

“क्या है...है क्या !...” युवराज को घोर आश्चर्य हुआ, उस सैनिक का भय देखकर।

“धेनुक मारा गया श्री युवराज !...आर्य-सेना का प्रबल वेग सम्हालना असम्भव हो गया है...समग्र द्रविड़-सेना तीव्र वेग से पलायन कर रही है !...”

“पलायन !...” तड़प उठे युवराज।

“जी हाँ श्रीयुवराज !...यदि आप शीघ्र ही युद्धक्षेत्र में पदार्पण न करेंगे, तो कुछ ही क्षणों में आर्य-सेना...चलिये श्रीयुवराज ! विलम्ब न कीजिये। [बिना आपके चले, द्रविड़-सेना सम्हाल नहीं सकती...”

“धबड़ाओ नहीं !...” युवराज गम्भीर स्वर में बोले—“मैं चलता हूँ...मेरा अश्व ठीक करो...”

वह सैनिक दौड़ता हुआ रावटी से बाहर चला गया। युवराज ने अति शीघ्र सैनिक वस्त्र धारण किये और रावटी से बाहर आ गये। दो अश्व प्रस्तुत थे। एक पर झुपटकर युवराज आसीन हो गये और दूसरे पर वह सैनिक। तीव्र वेग से दोनों व्यक्तियों ने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया।

धेनुक के धराशायी होते ही समग्र द्रविड़-सेना हतोत्साह हो गई और उस समय, जब कि आर्य-सेना ने उनपर प्रबल शक्ति द्वारा आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया, तो द्रविड़-सेना रुक न सकी और भाग चली इधर उधर जंगल और पहाड़ों के मध्य। आर्य-सेना अपनी विजय पर हर्षोःफुल्ल हो जय-जयकार कर उठी।

“ठहरो !...” विद्युत् रेखा के समान युवराज का तीव्र गर्जन गूँज उठा। साथ ही, भागती हुई द्रविड़ सेना के पैर जहाँ के तहाँ रुक गये, मानो किसी दैवी शक्ति ने उनके पैर भूमि पर जकड़ दिये हों।

“लौट आओ !... वीरत्व को कलंक लगाने के बदले अपने शोणित से इस तृषित मेदिनी को तृषा शान्त कर दो !”—युवराज को देखते ही द्रविड़ सेना का उत्साह द्विगुणित हो उठा। एक झटके के साथ द्रविड़-सेना पुनः रणभूमि की ओर पलट पड़ी। देखते ही देखते पुनः घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। स्वयं युवराज नारिकेल अपनी प्रबल कृपाणधारा से शत्रुओं को विच्छिन्न करने लगे। उनका हस्त-लाघव देखकर द्रविड़-सेना अतीव उत्साह के साथ शत्रुओं का मर्दन करने लगी। एक क्षण में ही आर्य-सेना में हाहाकार मच गया।

“द्रविड़-सेना का वह गुप्त संचालक रणक्षेत्र में आ पहुँचा है श्रीमान् !”—एक सैनिक ने दूर खड़े हुए पर्णिक से कहा—“देखिये ! भागती हुई द्रविड़-सेना पुनः लौट पड़ी है और अतीव प्रबलता के साथ हमसे युद्ध कर रही है। ऐसा ही वेग रहा तो, हमारी पराजय निश्चित है...”

“मैं देख लेता हूँ उस गुप्त संचालक को”—पर्णिक तीव्र गति से उस ओर बढ़ा।

दूसरे ही क्षण दोनों सेनाओं के प्रबल संचालक एक दूसरे के समक्ष खड़े थे, आश्चर्यचकित नेत्रों द्वारा एक दूसरे को अवलोकन करते हुए।

“किरात कुमार पर्णिक !...” युवराज के मुख से साक्षर्य ये वाक्य निकल पड़े। भला उस किरात युवक को वे भूल कैसे सकते थे, जिससे एक दिन भयानक वनस्थली के मध्य युद्ध हुआ था।

“युवराज आप !....” पर्णिक भी आश्चर्यान्वित हो उठा।

“ओह ! इतने दिनों के पश्चात् आज हमलोगों का मिलन हो रहा है”—

“हाँ युवराज ! और ऐसे स्थान पर, ऐसे सुसमय में, कि हम दोनों अपने पुगने बैर की ज्वाला युद्ध द्वारा भली प्रकार शान्त कर सकते हैं”—पर्णिक बोला।

“यथार्थ कहते हो तुम !...महामाया की कृपा से, हमारे हृदयों में प्रज्वलित विद्वेषाग्नि की प्रखर ज्वाला ने अन्ततोगत्वा हम दोनों को एक अत्यन्त उचित स्थान पर एकत्रित कर ही दिया। यह युद्धस्थल है और हम दोनों हैं एक दूसरे के प्रबल शत्रु !...आज हम दोनों की आकांक्षाएँ अवश्य पूर्ण होंगी किरात कुमार !”—युवराज ने कहा।

“पर्णिक प्रस्तुत है युवराज !...आइये ! आज हमारे शक्ति का निर्णय हो जाय”—पर्णिक ने अपना कामुक हाथ में ले लिया।

“तुम मेरे प्राचीन शत्रु हो और स्वदेश-द्रोही भी ! तुमने स्वदेश की पुकार के विरुद्ध विदेशीय की सहायता की है, अतः तुम्हें न्याय दण्ड देना मेरा परम कर्त्तव्य है” युवराज ने भी अपना कामुक निकाल लिया।

पर्णिक ने कामुक पर तीर चढ़ाया, युवराज ने भी। कान तक कामुक खींचकर पर्णिक ने अपना तीर युवराज के वक्ष को लक्ष्य

करके छोड़ दिया । युवराज के भी कामुक से तीव्र वेग से तीर निकला और बीच मार्ग में ही दोनों तीर एक दूसरे से टकरा कर शान्त हो गिर पड़े भूमि पर ।

इस बार युवराज ने तीर छोड़ा, परन्तु रण-विशारद पर्णिक ने युवराज के तीर का खण्डन अपने तीर से बीच में ही कर डाला । दोनों ओर से तीरों की बौछार होने लगी ।

X

X

X

“आश्चर्य क्यों होगा आर्य सम्राट ?...आपका हस्तकौशल देखकर मुझे आश्चर्य क्यों होगा ?”—द्रविड़राज बोले । इस समय उस प्रशस्त सुरंग में आर्य सम्राट् एवं द्रविड़राज परस्पर युद्ध में तल्लीन थे । घड़ीभर से कृपाण युद्ध हो रहा था, परन्तु अभी तक कोई भी किसी पर विजय नहीं पा सका था । दोनों सम्राट् नाना प्रकार के कौशल-युद्ध में प्रयोग कर रहे थे । महापुजारी एवं गुप्तचर खड़े थे मौन होकर ।

“अद्भुत है !...आपका प्रतिघात अद्भुत है द्रविड़राज !”—आर्य सम्राट् साश्चर्य बोले ।

“सावधान आर्य सम्राट् !...” द्रविड़राज का कृपाण प्रवल वेग से लपका आर्य सम्राट् की ओर परन्तु आर्य सम्राट् ने अतीव सावधानतापूर्वक उस प्रतिघात का निवारण कर लिया ।

“द्रविड़राज को विदित हो...” आर्य सम्राट् बोले—“कि अब तक आर्य सम्राट् केवल एक ही व्यक्तिद्वारा पराजित हुए हैं—अन्यथा इस संसार का कोई वीर आर्य सम्राट् को विजय नहीं कर सका है...”

“द्रविड़राज कुछ न बोले । उनका घात प्रतिघात तीव्र वेग से प्रारम्भ था । इस बार आर्य सम्राट् कुछ चौंके, बोले—आश्चर्य है द्रविड़राज !...कि आपकी युद्ध प्रणाली एकदम वैसी ही है, जैसी किरात नायक पर्णिक की !”—

“किरात नायक पर्णिक !” आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों द्वारा आर्य-सम्राट की ओर देखते हुए बोले द्रविड़राज ।

“जी हाँ ! उस युवक से मैं युद्ध कर चुका हूँ । वह भी ठीक आप ही जैसा घात प्रतिघात करता है... इस संसार में केवल वही व्यक्ति है, जिसने आर्य सम्राट को पराजित किया है...”

“उसने पराजित किया है आपको ?”—विस्मय से द्रविड़राज पूछ बैठे—“उस बच्चे ने आपको पराजित कर दिया है ?... आश्चर्य !”—द्रविड़राज का कृपाण रुक गया—“मुझे अब आप से युद्ध करने की आवश्यकता नहीं...”

“क्यों...”

“जब आप उस बच्चे को पराजित न कर सके, तो मुझपर विजय पाना आपकी दुराशा मात्र है...” द्रविड़राज ने कहा, परन्तु न समझ सके आर्य-सम्राट द्रविड़राज के इस अद्भुत पहेलिका को...

“हैं ! मेरे बांम नेत्र के इस तरह फड़कने का कारण ! चलिये ! अत्यधिक विलम्ब हो गया...” द्रविड़राज ने कहा—“अब रणक्षेत्र की ओर चलना आवश्यक है.... सन्ध्याकाल सन्निकट है...”

×

×

×

“सन्निकट हैं... अब आपकी मृत्यु सन्निकट है युवराज ! सावधान !” पर्णिक ने कृपाण का मरपूर घात किया युवराज पर, परन्तु युवराज ने अतीव शीघ्रतापूर्वक उस घात को रोक लिया । जब दोनों प्रतिद्वन्द्वी कार्मुक-युद्ध में एक दूसरे पर विजय न प्राप्त कर सके, तो कृपाण युद्ध में जुट गये । आर्य एवं द्रविड़-सेना, अपने संचालकों का यह प्रचल युद्ध देखकर अतीव उत्साह के साथ एक दूसरे से युद्ध कर रही थीं ।

“तुमने हमारे कुल के पवित्र रत्नहार की चोरी की थी पर्णिक ! तुम्हारा अपराध अक्षम्य है”—युवराज ने कहा ।

“मैंने आपका रत्नहार चुराया था युवराज ?”—पर्णिक क्रुद्धस्वर से

हुँकार उठा—“आपके बनमानुष ने मेरा रत्नहार चुराया था । मेरी माता जी का वह रत्नहार था...” आप असत्य सम्भाषण करने का दुस्साहस न करें...”

“दुस्साहस !....” क्रोध से काँप उठे युवराज, और उनका कृपाण बायुमण्डल में नृत्य कर उठा, तीव्र वेग से ।

×

×

×

×

“अस्त्र संचालन परिहास नहीं है युवराज !...पर्णिक के ऊपर कृपाण का वार करना परिहास नहीं है...” पर्णिक ने व्यंग्य किया ।

“सावधान वीर युवक !...” युवराज गरजे—“मेरा घात सम्हालो...” युवराज का कृपाण पर्णिक की वक्ष की ओर लपका । पर्णिक ने अपना कृपाण, घात के निवारणार्थ, युवराज के कृपाण के आगे कर दिया । परन्तु युवराज का कृपाण इतने प्रबल वेग से आ रहा था कि पर्णिक का कृपाण भयानक झुन्नाटे के साथ उसके हाथों से छूटकर दूर जा गिरा । सन्निकट हो था कि युवराज का कृपाण पर्णिक के वक्ष में प्रवेश कर अपनी रक्त-पिपासा शान्त करता, परन्तु न जाने क्यों युवराज का हाथ एकाएक रुक गया । उनका हृदय करुण चीत्कार कर उठा ।

“रुक क्यों गये युवराज !.....” पर्णिक हताश वाणी में बोला—“शत्रु के प्रति दया प्रदर्शित करना उचित नहीं । आप विजेता हैं—शीघ्र ही मेरे रक्त से अपना अस्त्र रक्षित करें.....आप न जानते होंगे युवराज ! कि पर्णिक की माता ने उसे वीरतापूर्वक मरना सिखाया है.....”

“और तुम न जानते होगे पर्णिक !.....” युवराज बोले—“कि युवराज के पिता ने उन्हें निर्बलों को क्षमा कर देने का आदेश दिया है.....”

“धन्य हैं आपके पिता !.....”

“केवल मेरे ही पिता नहीं, तुम्हारे भी पिता—जम्बूद्वीप के प्रत्येक प्राणी के पिता हैं वह !.....” युवराज बोले—“उठो ! अपना कृपाण उठाओ.....अभी तुमसे मेरी रणलालसा शांत नहीं हुई.....” युवराज ने पर्णिक कृपाण स्वयं उठाकर उसके हाथों में दिया ।

“युवराज बड़े सहृदय हैं”—पर्णिक ने कहा । शीघ्र ही पुनः दोनों दुर्दान्त प्रतिद्वन्द्वो कृपाण-संचालन में संलग्न हो गये, इतनी देर का प्रेम-मय सम्भाषण विस्मृत कर । पुनः दोनों के हृदयों पर क्रोध ने आधिपत्य कर लिया और दोनों एक दूसरे पर प्रलयंकर घात करने लगे । उसी समय उच्च स्वर से एक शृगाल अर्तनाद कर उठा ।

×

×

×

“शृगाल आर्तनाद कर रहे हैं...अशुभ अंग फड़क रहे हैं...क्या होनेवाला है चक्रवाल ?...”

“महामाया का स्मरण करो”—चक्रवाल ने गम्भीर स्वर में कहा । इस समय रथ घनघोर जंगल के मध्य से चला जा रहा था । स्वयं चक्रवाल रथ संचालन कर रहा था और भीतर बैठी थी किन्नरी निहारिका, अपना प्रकम्पित हृदय लिये ।

“रथ और वेग से चलाओ चक्रवाल !...सन्ध्या सन्निकट है...न न जाने क्यों हृदय-प्रदेश पर एक अनिवर्चनीय भय की सृष्टि होती जा रही है । ऐसा करो कि अत्यन्त शीघ्र हम रणक्षेत्र में पहुँच जायँ । मैं उन्हें एक बार देखना चाहती हूँ—केवल एक बार !”—निहारिका ने कहा । उसके नेत्रों में विश्रमान ये अश्रुकण ।

“यह तुम क्या कह रही हो !...”

“ऐसा प्रतीत होता है चक्रवाल ! मानों शीघ्र ही मेरा सर्वनाश होना चाहता है...तुम मेरे ऊपर दया करो । रथ और वेग से ले चलो”—

चक्रवाल ने अश्वों को चाबुक मारी । अश्व तीव्र गति से भाग

चले । रथ के भारी पहियों द्वारा उच्चारित घड़-घड़ शब्द शून्य बनस्पती को कम्पित करने लगा !

X

X

X

“जी चाहता है, सदैव इसी प्रकार हमारा तुम्हारा युद्ध होता रहे” —युवराज कह रहे थे—“दिवस के प्रोज्ज्वल प्रकाश में, रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में, ग्रीष्म की विदग्धकारी ऊष्णता में, वर्षा के अवा-
धित विन्दुविचन में एवं हेमन्त की करुण शीतलता में हमारे ये कृपाण इसी प्रकार संचालित रहें...ओह ! कितना आनन्दकारी प्रतीत हो रहा है, तुमसे युद्ध करना...पर्णिक अद्भुत हो तुम !....”

“युवराज अन्यमनस्क क्यों होते जा रहे हैं ?”—

“नहीं तो !...अब तो हम अनन्त काल तक युद्ध करने में तल्लीन रहेंगे । वह देखो ! सूर्य की अन्तिम किरणें अस्ताचल की ओट में अन्त-
र्हित होने को प्रस्तुत हैं । प्रतीच्याकाश पर रक्तंजित प्रदोष का नृत्य क्या ही आवेश मय प्रतीत हो रहा है !...तुम देख रहे हो न !...”

X

X

X

X

“देख रही हूँ...वही युद्धशिविर है न ?”—पर्णिक की माता ने सामने की रावटियों की ओर संकेत कर जम्बुक से पूछा । जम्बुक ने मस्तक हिलाकर स्वीकृति दी । दोनों इस समय आर्य शिविर के सन्निकट आ पहुँचे थे ।

“उस स्थल पर ले चलो, जहाँ युद्ध हो रहा है”—पर्णिक की माता ने कहा ।

सागर की उत्ताल तरंगों की भाँति चारों ओर छिटकी हुई आर्य सेना के मध्य से जम्बुक अपना अश्व ले चला । उसे देखते ही आर्य सेना चिस्ला उठी—“मारो मारो !...यही है वह बनमानुष !...”

सहस्रों तीर एवं बर्छियाँ जम्बुक के शरीर में एक साथ ही घुसने लगीं । दूसरा समय होता तो जम्बुक उन क्षुद्र सैनिकों को कीड़ों की तरह मसल देता, परन्तु इस समय पर्णिक की माता उसके साथ थी ।

जम्बुक ने पर्णिक की माता के शरीर को अपने विशालकाय शरीर से ढँक लिया, ताकि उसे कोई हानि न पहुँचे ।

किंचित ही देर पश्चात् जम्बुक का शरीर रक्तर्जित हो उठा । उसका अंग-प्रत्यंग भयानक तीरों से छिद गया । परन्तु वह दुर्दान्त बनमानुष रुका नहीं । आगे बढ़ता ही गया ।

द्रविडराज युगपाणि भी, आर्य सम्राट् एवं महापुजारी के साथ अभी अभी ही गुप्तमार्ग से बाहर निकलकर युद्ध शिविर में पहुँचे थे । जम्बुक को तीरों से छिदा हुआ, एक स्त्री के साथ अश्व पर आसीन देखकर द्रविडराज ने पुकारा—जम्बुक !...

स्वर सुनते ही मरणासन्न जम्बुक ने अपना घोड़ा फेरा । द्रविडराज के सन्निकट जाकर वह अश्व पर से उतर पड़ा और पर्णिक की माता को सहारा देकर भूमि पर उतारा । पर्णिक की माता की दृष्टि द्रविडराज पर पड़ी और द्रविडराज की दृष्टि पर्णिक की माता पर । एक क्षण के लिए दोनों निस्तब्ध रहे—

“राजमहिषी !...” दयार्द्र स्वर में पुकारा द्रविडराज ने ।

“नाथ !...” दौड़कर पर्णिक की माता गिर पड़ी उनके चरणों पर । जम्बुक चेतना हीन होकर गिर पड़ा भूमि पर ।

“प्रिये ।...” हर्षातिरेक से द्रविडराज के मुख से शब्द ही न निकल रहे थे—“मृगे क्षमा कर दो...”

“जम्बुक !...” महापुजारी अपना नेत्र पोंछते हुए जम्बुक के पास आये, जो कि इस समय आहत भूमि पर पड़ा था—“क्या हो गया जम्बुक !”

“.....” जम्बुक ने रोते हुए अपना मस्तक ठोका, पुनः उँगली उठाकर व्योम की ओर संकेत कर दिया, मानो कह रहा हो—तुड़ाकर सभी से मधुर प्रेम नाता...”

×

×

×

“अब रहने दीजिये युवराज । सन्ध्या का आगमन हो रहा है, अब युद्ध स्थगित कर देना चाहिए”—पर्णिक ने कहा ।

“अब तो यह युद्ध रुकना असम्भव है पर्णिक !...सन्ध्या का आगमन एवं रात्रि का प्रगाढ़ अन्धकार इस युद्ध में बाधा नहीं पहुँचा सकते....” युवराज ने कहा । उनपर न जाने कैसा उन्माद-सा छा गया था ।

पर्णिक धीरे धीरे क्रोधित होता जा रहा था, युवराज का युद्ध के लिए हठ देखकर—“अब बचना युवराज !...” वह चिल्लाया और उसका कृपाण प्रलयंकर गति से युवराज की ओर बढ़ा । युवराज इस समय कुछ भूले भूले से हो रहे थे । उनके नेत्र पश्चिमाकाश की अरुणिमा पर केन्द्रित हो रहे थे । पर्णिक की पुकार सुनकर वे सचेत हुए । उन्होंने प्रतिघात के लिए अपना कृपाण सम्हाला । उसी समय दौड़ कर आते हुए द्रविड़राज का स्वर गूँज उठा युद्ध स्थली में—“युवराज रोक लो कृपाण !...”

भटके के साथ युवराज का कृपाण रुक गया, अपने पिता का स्वर सुनकर—परन्तु पर्णिक का कृपाण न रुकता था, न रुका । तीव्र वेग से आते हुए उस विकराल कृपाण ने युवराज के वक्ष का चुम्बन कर ही लिया । उनके मुख से एक करुण चीत्कार निकलकर दिशाओं को प्रताड़ित कर उठी । वे चेतनाहीन होकर भूमि पर गिर पड़े—कटे वृक्ष की तरह । घाव भयानक लगा था ।

“क्या हुआ !...क्या हुआ !...” द्रविड़राज दौड़े आये युवराज के पास । पर्णिक की माता भी आई ! देखा—जीवन प्रदीप बुझने के समीप था ।

“युवराज !...वत्स !...” द्रविड़राज रो पड़े ।

“पिताजी !...” युवराज ने अपने नेत्र खोले—“मैंने अपने विपत्ती पर विजय पाई । द्रविड़कुल की वीरता पर मैंने कलंक कालिमा नहीं लगाई...मगर मैंने उसे निर्बल जानकर क्षमा कर दिया....”

“कौन है तुम्हारा वह विपत्ती युवराज !—”

“यह है पिता जी !...यह !...यही एक दिन जंगल में मुझसे मिला था...” युवराज ने अपने आशक्त करों से पर्णिक की ओर संकेत किया, जो इस समय प्रस्तरवत् खड़ा सब दृश्य देख रहा था ।

“यही था तुम्हारा विपत्ती !...हाय कर उठे द्रविड़राज—“वत्स यह तुम्हारा लघु भ्राता है...”

“लघु भ्राता !...” युवराज काँप उठे । उन्होंने उठने का प्रयत्न किया, परन्तु पुनः चेतनाहीन होकर गिर पड़े । पर्णिक ने आगे बढ़कर उन्हें समझाला ।

धीरे-धीरे युवराज ने पुनः अपने नेत्र खोले । पर्णिक ने देखा, उन नेत्रों में मृत्यु की स्पष्ट छाया विराजमान है । अब जीवन की आशा दुर्लभ है ।

“पर्णिक !...” युवराज ने मरणासन्न वाणी में पुकारा ।

भ्रातृवर !...रो पड़ा अभागा पर्णिक—“मुझे क्षमा कर दो भ्रातृवर !” और युवराज ने पर्णिक के मस्तक पर अपना शिथिल हाथ रख दिया ।

पर्णिक की माता चेतनाहीन होकर अलग गिरी थी । महापुजारी उसे समझाल रहे थे । इतने में ही लड़खड़ाता हुआ जम्बुक आ पहुँचा । वह युवराज के चरणों पर आर्तनाद करता हुआ गिर पड़ा । युवराज ने जम्बुक की दशा देखी—सब कुछ समझ भी लिया । समझ लिया कि जिस बनमानुष ने जन्म समय में उनका साथ दिया था, वह इस मरण-काल में भी उनका साथ देने को प्रस्तुत है ।

“अच्छा हुआ कि तुम भी आ गये जम्बुक !...”

“.....” जम्बुक युवराज के पैरों पर अपनी नासिका रगड़ने लगा ।

“हम दोनों एक साथ ही इस पृथ्वीतल पर आये थे, आज एक

साथ ही यहाँ से चलेंगे'—युवराज बोले । जम्बुक चेतनाहीन होकर युवराज के पार्श्व में पड़ रहा । उसके शरीर पर सहस्रों घाव थे ।

“आपने हमें विनष्ट कर दिया आर्य-सम्राट !....” द्रविड़राज बोले । आर्य-सम्राट सिक्त नेत्रों से यह सारा दृश्य देखते हुए खड़े थे ।

“हम क्षमा चाहते हैं द्रविड़राज !...हम हारे, आप जीते । कल हमारी सेना जम्बूद्वीप छोड़कर प्रस्थान कर देगी”—आर्य-सम्राट तिग्मांशु बोले ।

“व्यर्थ है आर्य सम्राट !...आपने जिस लालसा से जम्बूद्वीप में पदार्पण किया था, वह अवश्य पूर्ण होगी...यह देखिये आज युगों की असहनीय ज्वाला में विदग्ध होने के पश्चात् यह देवी मुझे प्राप्त हुई हैं । एक दिन मैंने अपने इसी मुख द्वारा इन्हें आजन्म निर्वासन की दंडाज्ञा सुनाई थी—आज इसी मुख द्वारा अपने अधूरे न्याय पर पश्चात्ताप कर रहा हूँ । मैंने न्याय का पालन किया था, परन्तु पतिधर्म का पालन न कर सका था, आज इस देवी के साथ मैं भी निर्वासन दंड भोगने को प्रस्तुत होकर पतिधर्म का पालन करूँगी ।...आज से यह सारा विशाल साम्राज्य आपका है * और यह मेरा पुत्र पण्डित आपका सहकारी ।...आप भिन्न हैं—मैंने आपको अपना विशाल साम्राज्य एवं वीर पुत्र प्रदान कर दिया । द्वार पर आये हुए भिन्न को द्रविड़राज निराश नहीं लौटाते

❁ नोट—यह इतिहास—प्रसिद्ध बात है कि द्रविड़ और आर्यों के युद्ध के पश्चात् यह सारा देश आर्यों के हाथ में आ गया था । इसे हमने इस प्रकार दिखाया है कि स्वयं द्रविड़राज ने आर्य-सम्राट को अपना साम्राज्य प्रदान कर दिया । पाठकों को यह उपन्यास ऐतिहासिक प्रतीत होगा, परन्तु वास्तव में यह ऐतिहासिक नहीं है—केवल कुछ Historical touch रख दिया गया है । इस उपन्यास में जिस काल का वर्णन है, यदि उस काल के इतिहास से पाठक मित्रान करने लगें, तो इसमें बहुत सी अत्यक्तियाँ पावेंगे ।

—लेखक

आर्य-सम्राट !...अब हम दोनों पति-पत्नी जंगलों में विचरण करते हुए निर्वासन दण्ड भोगेंगे..." बेचारे द्रविडराज रो पड़े। आर्य-सम्राट के नेत्रों से भी कई अश्रुविन्दु भूमि पर टपक पड़े।

युवराज के नेत्रों की ज्योति क्षीण हो रही थी। उनकी म्लान मुलाकृति पर मृत्यु के क्रूर लक्षण प्रदर्शित होने लगे थे। उनके मण्डरासन्न हृदयप्रदेश में भयानक अन्धकार प्रसारित हो रहा था। उसी प्रगाढ़ अन्धकार में युवराज ने देखा, कलामयी किन्नरी की मनोहारी प्रतिमा। युवराज का शरीर विस्मय से कम्पित हो उठा। एक क्षण के लिए उनके मृतप्रायः नेत्रों की ज्योति लौट आई। उन्होंने देखा, किन्नरी निहारिका विह्वल भंगिमा लिये उसी ओर को एक रथ पर से उतर कर दौड़ी आ रही है—और नायक चक्रवाल भी उसके साथ आ रहा था, अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों से जलविन्दु निस्सारण करता हुआ।

“किन्नरी !...” युवराज के मुख से अस्फुट स्वर निकले।

“देव !...” किन्नरी हाहाकार करती हुई युवराज के रक्तरंजित शरीर पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

“किन्नरी !...कलामयी !...”

“देव !...यह क्या हो गया देव !...तुमने मुझसे ऐसा छल क्यों किया !...किन्नरी ने अपनी हथेलियों से युवराज का मुख पकड़ लिया—“बोलो देव ! मुझे उजाड़ देने में तुम्हें क्या मिला ! मुझे विनष्ट कर देने में तुम कौन-सी निधि पा गये ! मुझसे छल करके तुमने कौन-सा संसार बसा लिया !...” किन्नरी के आरक्त कपोल अभुषारा से भीग गये थे। चक्रवाल एक वृद्ध के नीचे अश्रुपूर्ण नेत्रों से खड़ा था।

“.....”

“तुम मुझे छोड़कर जा रहे हो, सदैव के लिये जा रहे हो...कहाँ जा रहे हो देव !...न जाओ !...मेरा संसार उजाड़ कर तुम अपना संसार बसाने न जाओ !...”

“जाना ही होगा किन्नरी !...” युवराज अत्यन्त शिथिल वाणी में बोले—“यमदूत मेरा आवाहन कर रहे हैं...मैं प्रसन्न हूँ—अत्यन्त प्रसन्न हूँ—शोक केवल इस बात का है कि नन्दन कानन में समग्र ऐश्वर्य की प्राप्ति करके भी तुम्हारी मधुरमूर्ति का दर्शन न कर सकूँगा । वहाँ, जहाँ चन्द्र एवं तारागणों की कला विद्यमान है—तुम्हारी मुग्ध-कारी कला न मिल सकेगी देखने को !....”

“तुम जा रहे हो स्वर्गिक अप्सराओं की कला का रसास्वादन करने—तुम्हें इस भूकिन्नरी की कला क्यों अच्छी लगेगी देव !... जाओ !...मेरा संसार विनष्ट कर देने से, यदि तुम्हारा ससार हरा-भरा हो सके, तो जाओ !...तुमने छल किया देव ! मेरे हृदय में अनिवर्चनीय आनन्द की सृष्टि कर, अब सदैव के लिये चले जा रहे हो, मधुर प्रेम नाता तुड़ाकर...”

“तुड़ाकर सभी से मधुर प्रेम नाता, चढ़ा भाग्य की नाव पर जा रहा हूँ” चक्रवाल गाने में तन्मय था ।

“ऐसा न कहो—मत कहो कलामयी !...मेरा रोम-रोम तुम्हारी सर्वतोन्मुखी कला द्वारा परिपूर्ण है । मैं ही जानता हूँ कि तुम्हें सदैव के लिये त्याग देने में मुझे कितनी वेदना हो रही है, मैं कितना व्यथित हूँ...”

युवराज के मुख से रक्त की धार बह चली, परन्तु वे शिथिल एवं अस्फुट स्वर में कहते ही गये—“तुम्हारी कला !...ओह ! उसका स्मरण न दिलाओ कलामयी !....तुम्हारी कला पर यदि सब कुछ निष्ठा-वर कर दूँ तो भी...जब तुम अपनी समग्र प्रतिभा का एकत्रीकरण कर अपनी सम्पूर्ण कला का संवरण कर, महामाया के समक्ष नृत्य करती थीं—तो मुझे लगता था, मानो तुम्हारे अवयव के संचालन के साथ ही साथ जगत् के यावत् कार्य संचालित हो रहे हों, मानों तुम्हारे नृत्य के साथ, प्रकृति नटी का समग्र सौंदर्य नर्तन करने में तल्लीन हो... तुम्हारा वह अपूर्व नर्तन अवलोकन करते-करते मुग्ध हो जाता था,

आत्म-विस्मृत-सा हो उठता था। उस समय तुम कलामयी सुन्दरी प्रतिमा-सी प्रतीत होती थीं। देवी-सी प्रोज्ज्वल मुखराशि हो जाती थी तुम्हारी। मानो स्वयं जगत् रचयित्री देवी महामाया अपने अपूर्व नर्तन से अपने शक्ति की प्रतिभा बिखेर रही हों... उस समय मैं स्वयं मातेश्वरी महामाया का प्रतिरूप जानकर तुम्हें भक्तिपूर्वक सादर प्रणाम करता था।... तुम्हारा सौंदर्य मातेश्वरी महामाया-सा देदीप्यमान है कलामयी !... जहाँ उपासना की सद्भावना विराजमान है, वहाँ कल्पिता की कालिमा का आभास कहाँ !...” युवराज की नाखी रुक गई। उनके मुख पर आसन्न मृत्यु के स्पष्ट लक्षण प्रतीत होने लगे। उनके मुख से अत्यन्त क्षीण स्वर निकला—“अब आशा दो कलामयी !...” उनके नेत्रों से अश्रुक्षण प्रवाहित हो चले। निहारिका उनके मुख की ओर अपलक नयनों द्वारा निहार रही थी।

निहारो नहीं प्रेयसा, राह पर अब,
सदा के लिए मैं चला जा रहा हूँ।

तुड़ा कर समी से मधुर प्रेम नाता,
चढ़ा भाग्य की नाव पर जा रहा हूँ ॥

एक वृद्ध के नीचे बैठा हुआ चक्रवाल सित स्वर में अलाप रहा था।

किन्नरी ने अपने अञ्जल द्वारा युवराज के अश्रुक्षण पोंछे, पुनः अंचल के छोर से थोड़ा-सा कुंकुम निकालकर युवराज के ललाट पर लगा दिया। युवराज का शरीर तीव्र वेग से प्रकम्पित हो उठा। वायु हाहाकारमयी गर्जना करता हुआ प्रवाहित होने लगा। वृद्धों पर बैठे हुए पक्षीगण आर्तनाद करते हुए दूर उड़ चले। किन्नरी निहारिका युवराज के निर्जीव शरीर पर चेतना हीन होकर गिर पड़ी।

शीघ्र ही चन्दनचिता प्रस्तुत हुई। विशाल चिता की क्रीड में युवराज एवं जम्बुक के निर्जीव शरीर रख दिये गये। रुदन करते हुए पण्डित ने अपने देवतुल्य भ्राता एवं उनके ‘जन्ममरण के साथी’ जम्बुक

की चिता में अग्नि दी। अश्रुपूर्ण नेत्रों से महापुजारी पौत्तालिक ने महा-माया की प्रार्थना की एवं शान्ति पाठ पढ़ा। वायु का वेग पाकर चिता की प्रखर ज्वालायें धूँ धूँकर प्रज्ज्वलित हो उठीं। और उसी के साथ-साथ प्रज्ज्वलित हो उठा निहारिका का सन्तप्त हृदय। उसने अपने कंठ-प्रदेश से वह रत्नमाला एवं अनामिका से वह मुद्रिका निकाली। जिसे स्वयं युवराज नारिकेल ने उसे प्रदान किया था। एक क्षण तक वह कुछ विचार करती रही, तत्पश्चात् हाथ बढ़ाकर उसने वे दोनों वस्तुएँ प्रज्ज्वलित चिता की गोद में फेंक दी।

चक्रवाल देख रहा था वह दौड़ कर उसके पास आया—“यह क्या किया तुमने !....” वह बोला—“उनके अनुम उपहारों को अपने से विलग क्यों कर दिया तुमने !...”

“जाने दो....जाने दो चक्रवाल !...” निहारिका रो पड़ी—“इन वस्तुओं को उनके साथ ही जाने दो ! क्या कल्लूंगी इन्हें अपने पास रखकर...”

“.....” चक्रवाल कुछ न बोला। उनके भी नेत्र अश्रुपूर्ण थे।

“चलो चक्रवाल !...यहाँ से कहीं दूर निकल चलो !....मैं यहाँ नहीं रह सकती। रहूँ भी तो किसके लिये !...”

“चलोगी !...” चक्रवाल ने शून्य दृष्टि से किन्नरी के मुख की ओर देखा—“व्योम की ओर चलोगी निहारिका !”

“चलूँगी !...जहाँ कहीं ले चलो !....” निहारिका ने कहा।

चक्रवाल रथ की ओर बढ़ा। निहारिका ने उसका अनुसरण किया। दोनों आकर रथ पर बैठ गये। रथ तीव्रगति से भयानक बन-स्थली का वन भेदन करता हुआ भाग चला। चक्रवाल की मधुर स्वर-लहरी रुदन-स्वर में परिवर्तित होकर अलाप उठी—

‘तुझाकर सभी से मधुर प्रेम जाता,

बड़ा भाग्य की नाव पर जा रहा हूँ।’

उस समय भगवान् अंशुमली ने अस्ताचल के क्रीड में अपना प्रोज्ज्वल मुख छिपा लिया था । वृक्षों के हरित पत्तनव वेदना पूर्ण गति से हिल रहे थे । प्रतीच्याकाश पर रक्तरंजित लालिमा अभी तक विद्यमान थी—मानो प्रकृति किन्नरी के कलापूर्ण कर्णों ने शुभ्र नभमण्डल के देदीप्यमान ललाट पर 'कुंकुम' की एक अरुणिम-रेखा खींच दी हो ।

बस

आपने फिल्म बहुत देखे होंगे
पर
पुस्तक रूप में प्रकाशित सजीव फिल्म

स्व० कुशवाहा कान्त रचित
लाल किले की ओर

हिन्दो में सर्वथा नवीन प्रयोग है

आपके सर्वप्रिय कथाकार स्व० कुशवाहा कान्त ने यह अप्रतिम रचना बिहार की एक फिल्म-कम्पनी के लिये की थी। परन्तु दुर्भाग्यवश वह फिल्म कम्पनी इस ओर कोई प्रयत्न नहीं कर पायी। उक्त कम्पनी से हुए सभी एग्रीमेंट स्वतः समाप्त हो चुके हैं। प्रस्तुत रचना के लिये बम्बई और मद्रास के अनेक फिल्म निर्माताओं की माँग के बावजूद हमने सर्वप्रथम इसे पुस्तकाकार ही प्रस्तुत किया है।

फिल्मी आनन्द !

लेखक की जादू भरी लेखनी का अनुपम चमत्कार !!



आज से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व 'लाल किला' मुगल सम्राट शाहजहाँ ने निर्मित कराया था। सदियों बीती और अब 'लाल किले' का महत्व भारतीय जनता के लिये स्वतंत्रता का प्रतीक बन गया है।

लाल किले की ओर

जन्म भूमि पर अपने शरीर के रक्त का अर्घ्य चढ़ाने वाले कान्ति-कारियों का जीता-जागता चित्र है।

लाल किले की ओर



स्व० 'कान्त' की कला आप से अपरिचित नहीं । 'लालकिले की ओर' में उनकी औपन्यासिक-कला ने सर्वथा नवीन मोड़ लिया है ।

रिवाजवरों की धाँय-धाँय और अपने ही खून के कीचड़ में हिमालय-से अडिग खड़े शहीदों का आत्मात्सर्ग देखकर आपका लहू उबल उठेगा—

क्रान्ति के प्रज्वलन्त वातावरण में रँगी कहानी के मध्य हास्य-रस का पुट आपको हँसने को, मुस्कराने का बाध्य कर देगा ।

लाल किले की ओर

स्व० कुशवाहा 'कान्त'

की आग भरी रचना है

लाल किले की ओर

हिन्दी कथा साहित्य में सर्वथा अनूठा प्रयोग है ।

अपनी प्रति आज ही लें लें ।

पृष्ठ संख्या लगभग तीन सौ

आकर्षक साज-मज्जा

सजिद्द मूल्य केवल ४)

बुकसेलरों तथा लाइब्रेरियों के लिये विशेष सुविधा ।

प्राप्ति-स्थान

चिनगारी प्रकाशन, वाराणसी

कान्त-साहित्य

- | | |
|------------------|--------------------|
| ४) निर्मोही | २) कुंकुम |
| २॥) इशारा | ४॥) मदमरे नयना |
| ४) नागिन | ५॥) विद्रोही सुमाष |
| ४॥) चूड़ियाँ | ४) पपिहरा |
| २॥) जलन | ३॥) लालरेखा |
| ३॥) मैवरा | ५) परदेसी २ भाग |
| ४) लवंग | २॥) उड़ते उड़ते |
| ४) मंजिल | १॥) रक्त मंदिर |
| ३॥) आहुति | ३) जंजीर |
| ५॥) नीलम | २॥) बसेरा |
| २॥) पत्थल | २॥) अकेला |
| २॥) जवानी के दिन | ४) दानवदेश २ भाग |
| २॥) उसके साजन | ४) गोल निशान |
| ॥) कैसे कहूँ | ३॥) हमारी गलियाँ |
| ३॥) बारस | ४) लालकिले की ओर |

२॥) पराजिता (कहानी-संग्रह)



कान्त-साहित्य-सदन

भद्रवर्ध्या, भिर्जापुर

